दुर्गासप्तशतीसर्वस्वम्

हिन्दीपद्यानुवादसहितम्

लेखक :
प्राणकवि-श्रीहरिशास्त्री

प्रकाशक :
संस्कृत-प्रचार-परिषद्-प्रकाशनम्
भारती-भवन, जोहरीजी का रास्ता
जयपुर (राजस्थान)

सम्वत् २०२८

मूल्य रूप्यकपञ्चकम्
५) रुपये

केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जयपुर

पुस्तकालय

पुस्तक संख्या..... .....

वर्गीकरण संख्या.....

दुर्गासप्तशतीसंग्रहः

हिन्दीपद्यानुवादसहितम्

श्रीदुर्गा जयति

लेखक :

आशुकवि-श्रीहरिशास्त्री

1782

SV-2024

प्रकाशक :

संस्कृत-प्रचार-परिषद्-प्रकाशनम्

भारती-भवन, ~~मोतीलालजी का रास्ता~~

जयपुर (राजस्थान)

भारती संस्कृत मासिक

राजस्थान (जयपुर)

भारती भवन

बी-15, चू कालोनी, जयपुर-302004

सम्वत् २०२८

मूल्यं रूप्यकपञ्चकम्

५) रुपये

प्रकाशक :
संस्कृत-प्रचार-परिषद्
जयपुरम् (राजस्थानम्)

* सर्वाधिकार : प्रकाशकाधीनः *

मुद्रक :
श्री शङ्कर आर्ट प्रिण्टर्स
त्रिपोलिया बाजार
जयपुर

समर्पणम्

नित्यत्वान्म्रियते नात्मा रससिद्धः कविस्तथा ।
तस्मादाशुकविः सोऽयं स्वर्गतो नम्यते मया ।।
यदा श्रीबाणभट्टः स देवलोकमितो गतः ।
तदोक्तं यद्वचः प्राज्ञैस्तदत्र स्मर्यतेऽधुना ।।

यथा—'ध्वस्तः काव्योरुमेरुः कविविपणिमहारत्नराशिर्विशीर्णः,
शुष्कः शब्दौघसिन्धुः प्रलयमुपगतो वाक्यमणिक्यकोशः ।
दिव्योक्तीनां निधानं निधनमुपगतं हा हता दिव्यवाणी,
बाणे गीर्वाणवाणीप्रणयिनि विधिना प्रापिते दीर्घनिद्राम् ।।'

अतः—'त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्प्यते' ।
इतिरीत्यानया देव-रूपस्य तस्य सम्मुदे ।।
कृतं श्रीहरिणैवेदं हिन्दीपद्यैरनूदितम् ।
दुर्गासर्वस्वकं तस्मै स्वर्गताय समर्प्यते ।।

समर्पक :
दीनानाथशर्मा त्रिवेदी मधुपः, न्याय-साहित्याचार्यः
'भारती' सम्पादकः जयपुरम्

प्रस्तावना

दिवङ्गत पूज्यप्रवर श्री हरिजी शास्त्री से आज संस्कृत जगत् में कौन अपरिचित है ? अध्ययन काल से ही वे सरल संस्कृत में पद्यरचनाएं करके अपने गुरुजनों को तथा मित्रों को सदा प्रसन्न रखते थे। महामहोपाध्याय श्रीगिरिधरशर्माजी चतुर्वेदी महोदय ने जब वे संस्कृतमहाविद्यालय के अध्यक्ष थे तो, उनने श्रीहरिशास्त्रीजी को कोई एक कल्पना पद्य-रचना के लिये दी और श्री शास्त्रीजी ने तुरन्त एक ऐसी चमत्कृत करने वाली पद्य रचना करके उनके सामने प्रस्तुत करदी, जिसे देखकर महामहोपाध्याय श्रीगिरिधरशर्माजी और इतर वहां उपस्थित पण्डित मण्डली ने मुक्त कण्ठ से श्री शास्त्रीजी की प्रशंसा की और तुरन्त सबने एकमत होकर श्री हरिशास्त्रीजी को आशुकवि की उपाधि प्रदान कर दी।

श्री शास्त्रीजी ने अपने तारुण्य काल में संस्कृतमहाविद्यालय में अध्यापन का कार्य बड़ी कुशलता से किया था। तदनन्तर भी वे पुराणवाचन में और स्थान स्थान पर जाकर लोगों को सदुपदेश करने के काम में तो तत्पर रहते ही थे, मैंने जब ७, ८ वर्ष पूर्व उनसे जाकर यह निवेदन किया कि भट्ट श्री मथुरानाथजी महाराज के दिवङ्गत होजाने के पश्चात् आप ही अब जयपुरस्थ पण्डित जगत् में ऐसे व्यक्ति हैं जो 'भारती' का ठीक प्रकार से सम्पादन कर सकते हैं। इस पर पण्डित जी ने सहर्ष स्वीकृति दी और तब से वे निरन्तर 'भारती' का सम्पादन करते रहे थे। २०२६ के चैत्र मास में जब मैं एक बार उनके पास 'भारती के विषय में बातचीत करने गया था तो सहसा उनने मुझ से कहा कि भगवती की प्रेरणा से मैंने इन नवरात्रों में 'सप्तशती' का पद्यानुवाद बना डाला है और अब में इसे पुस्तकाकार भी बना कर देवाभक्त जनों के संमुख रखना चाहता हूँ। मैंने श्री शास्त्री जी के इस कथन को क्रियात्मक रूप प्रदान करने का वचन देदिया था और उसी के परिणाम स्वरूप पाठकवृन्द के समक्ष यह आशुकवि श्री हरिशास्त्री जी के द्वारा हिन्दीपद्यमय दुर्गा सप्तशती मूल संस्कृतपद्यों के साथ साथ उपस्थित की जारही है आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि संस्कृतज्ञों के साथ २ हिन्दी भाषी जन भी इसका पूर्ण लाभ प्राप्त कर सकेंगे। स्वर्गीय श्री शास्त्री जी के प्रथम वार्षिक श्राद्धपर हम यह प्रकाशित करना चाहते थे किन्तु अन्तिम तीन अध्याय इधर उधर हो गए थे इस कारण कुछ विलम्ब से यह पुस्तक पाठकवृन्द के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। इति।

गिरिराज शर्मा
प्रबन्ध सम्पादक
'भारती' संस्कृत मासिक
भारती-भवन
मोतीजी का रास्ता, जयपुर
(राजस्थान)

स्थापननवरात्र
सं० २०२८

भारती संस्कृत मासिक
(जयपुर)
भारती भवन
ई-15, न्यू कालोनी, जयपुर-302001

प्राक्कथनम्

श्रीहरिशास्त्री, दाधीचः

श्रीगणेशाय नमः । श्रीजगदम्बिकायै नमः ।
श्रीगुरुभ्यो नमः । ह्रीं नमः ।

गुरु पादारविन्द श्रीगणनायक भैरव ।
अम्बिका और शिव को प्रणामकर भक्ति से ।।१।।

हिन्दीभाषो भवानीके भक्तों के श्रेय के लिए ।
दुर्गासप्तशती का मैं लिखता अनुवाद हूँ ।।२।।

महामाया भगवती चण्डिका परमेश्वरी ।
प्रेरणा देरही मेरे मूढ (मुग्ध) भी कविचित्तको ।।३

भवानी की कृपा का ही बल पा कवि श्रीहरि ।
समान छन्दों में दुर्गा-पाठ की नागरी लिखूँ ।।४।।

आठ अक्षर होते हैं अनुष्टुप्-एक पाद में ।
पूरा अनुष्टुप् बत्तीसवर्ण वाला प्रसिद्ध हैं ।।५।।

इतने ही अक्षरों में हिन्दी में इस छन्द का ।
अनुवाद किया जाना कैसा कठिन कार्य है ।।६।।

चण्डी-सप्तशती सारी अनुष्टुप् छन्द में लिखी ।
कुछ ही छन्द स्तोत्रों के बसन्त तिलकादि हैं ।।७

उन्हें भी उनही छन्दो में अनूदित है किया ।
यह अम्बा भगवती दुर्गा की ही कृपा हुई ।।८।।

मुझ से अल्पमति के साधारण मनुष्य के ।
इस गम्भीर गूढार्थ भवानी भव्य पाठ का ।।९।।

अनुवाद समश्लोकी असम्भव सुदुष्कर ।
इसका पूर्ण हो जाना दुर्गा ही की कृपा गिनों ।।१०

किया प्रारंभ इसका आषाढी नवरात्र में ।
इस ही विक्रमो वर्ष दो हजार पचीस में ।।११।।

श्रावणी पंचमी को या सन्ध्या में पूर्ण होगया ।
जैसा भो जो कुछ हुवा अम्बाजी को सुनादिया।।१२

आप श्रीमान के आगे अब प्रस्तुत है यह ।
देखिए पढिए और विचार कर लीजिए ।।१३।।

मेरी आन्तर इच्छा है विज्ञ संमान्य आप भी ।
इसके पाठ के हेतु निजसम्मति दीजिए ।।१४।।

तो चण्डी पाठका सारे देशमें सुप्रचार हो ।
घर घर में लोग इसे पढेंगे भक्तिभाव से ।।१५।।

हिन्दीभाषा भाषियों के हित की यह बात है ।
नागरो में वही मूलपाठ है इसको करें ।।१६।।

सभी सामान्य मति के विप्र क्षत्रिय वैश्य भी ।
अन्यान्य जन भी भक्तिभाव से इसको पढें ।।१७।।

उनके मन की सारी इच्छाएं पूर्ण होंयेंगी ।
जो चण्डी पाठ से होगा फल संसार में वही ।।१८।।

इसके पाठ से होगा, यह भी पाठ है वही ।
सर्व प्रथम अम्बाको सुनाया जब पाठ था ।।१९।।

तभी पञ्चम अध्याय पढते मम संमुख ।
मूर्ति पै से गिरी माला मूर्ति स्मेरमुखी दिखी ।।२०

तब मेरा मन अति प्रसन्न स्वच्छ होगया ।
इससे यह ही माना मैंने इस विभाव से ।।२१।।

श्रम स्वीकार है मेरा मेरी माता दयालु को ।
आगे प्रसार भी होगा इसका परिपूर्ण ही ।।२३।।

ऐसी प्रबल आशा है पूरेगी इसको शिवा ।
वही भगवती देवी कल्याण सबका करें ।।२४।।

क्षमा योग्य कहूं बात कुछ मैं अनुवाद में ।
किसी किसी नाम की मैं हिन्दी करगया सही ।।२५

कोई कोई नाम मां के ज्यों के त्योंही रखे यहां ।
नाम जो भी सुप्रसिद्ध परिवृत्ति असह्य थे ।।२६।।

वैसे ही हैं रखे, वेही छन्दमें खूब हैं सटे ।
देखिए आपभो पूर्ण विचारकर देखिए ।।२७।।

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तुते ।।

हिन्दी में इनका कैसा अनुवाद करें यहाँ ।
अनुष्टुप् छन्दका हिन्दी अनुष्टुप् लिख कौन ले ।।२९

मेरी समझ में तो ये नाम खूब प्रसिद्ध हैं ।
इनका करना हिन्दी रूपभङ्ग कहायगा ।।३०।।

मैने भी खूब सोचा है विमर्ष बहुधा किया ।
प्रेरणा भी मानस को यही प्राप्त हुई स्वयम् ।।३१

प्रसिद्ध नाम वैसे ही रहे उत्तम बात है ।
अन्यथा भाव उनके कहीं बदल जायंगे ।।३२।।

यदि कोई कवि तथा अनुवादक विज्ञ हो ।
करें तो उक्त नामों का करके भेजिए यहाँ ।।३३।।

अनुष्टुप् छन्द का हिन्दी अनुष्टुप् छन्द ही बनें ।
अनुवाद सही होवे तो कर्ता का कमाल है ।।३४।।
मैं उनके पदाब्जों में करूँगा शिरसा नति ।
ऐसे अन्यत्र भी कोई पद सन्धि समास हैं ।।३५।।

विचार पूर्व हमने युक्त ही परिवृत्ति की ।
विद्वान्महानुभावों को सब मालुम होयगा ।।३६।।

शोधके योग्य जो बातें उनकी सूचना करें ।
बडा आभार मानूँगा, सुधारूँगा अवश्य हो ।।३७

कृतज्ञ हूँगा सबका करूंगा धन्यवाद मैं ।
अर्गला, कील, कवच, नवार्ण विनियोग भी ।।३८

हिन्दी अनुष्टुप् छन्दों में अनूदित किए यहाँ ।
रात्रिसूक्त तथा देवीसूक्त तीनों रहस्य भी ।।३९।।

हिन्दी अनुष्टुप् छन्दों में कवि श्रीहरि ने लिखे ।
इनसे लोग जो लाभ उठावेंगे सदैव तो ।।४०।।

अपना श्रम–साफल्य मान हूँगा प्रसन्न मैं ।
करैगी जगदम्बा तो मेरा श्रेय विधान ही ।।४१।।

❀ अथार्गलास्तोत्रम् ❀

श्रीहरिशास्त्रिणानूदितो दुर्गापाठः

ॐ अस्य श्रीअर्गलास्तोत्रमन्त्रस्य विष्णुऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहालक्ष्मीर्देवता,
श्रीजगदम्बाप्रीतये सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ॥

ॐ नमश्चण्डिकायै ।

मार्कण्डेय उवाच

ॐ जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥
मधुकैटभविद्रावि विधातृवरदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२॥
महिषासुरनिर्णाशि विधात्रि वरदे नमः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥३॥
वन्दिताङ्घ्रियुगे देवि सर्वसौभाग्यदायिनि ।
रूपं दे ह जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥४॥
रक्तबीजवधे देवि चण्डमुण्डविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥५॥
शुम्भस्यैव निशुम्भस्य धूम्राक्षस्य च मर्दिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥६॥
अचिन्त्यरूपचरिते सर्वशत्रुविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥७॥
नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥८॥
स्तुवद्भ्यो भक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥९॥
चण्डिके सतत ये त्वामर्चयन्तीह भक्तितः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१०॥
देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥११॥
विधेहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकैः ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१२॥

श्रीगणेशानमः । श्रीजगदम्बिकायै नमः ।

अथ अर्गलास्तोत्रम्—

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वधा स्वाहा तुम्हें नमः॥१
मधुकैटभ नाशो हे विधिकी वरदे नमः ।
रूप दो जय दो देवि ! यश दो शत्रु मारदो ॥२॥
महिषासुरविध्वंसि वरदाता तुम्हें नमः ।
रूप दो जय दो देवि ! यश दो शत्रु मार दो ॥३॥
रक्त बीज प्राणहरी चण्डमुण्ड बिनाशिनी ।
रूप दो जय दो देवि ! यश दो शत्रु मार दो ॥५॥
निशुम्भशुम्भमथिनी धूम्रलोचनमारिणी ।
रूप दो जय दो देवि ! यश दो शत्रु मार दो ॥६॥
अचिन्त्य रूपचरिता तू है शत्रु बिनाशिनी ।
रूप दो जय दो देवि ! यश दो शत्रु मार दो ॥७॥
पद वन्दित हैं तेरे तू है सौभाग्यदायिनी ।
रूप दो जय दो देवि ! यश दो शत्रु मार दो ॥४॥
भक्तिप्रणत लोगों को चण्डिके ! नमते मुझे ।
रूप दो जय दो देवि ! यश दो शत्रु मार दो ॥८॥
भक्ति से स्तुतिकारों के कष्टहारिणि चण्डिके !
रूप दो जय दो देवि ! यश दो शत्रु मार दो ॥९॥
जो तुम्हें भक्तिसे नित्य पूजते हैं उन्हे शिवे !
रूप दो जय दो देवि ! यश दो शत्रु मार दो ॥१०॥
दे ओ आरोग्य सौभाग्य देओ देवि महासुख ।
रूप दो जय दो देवि ! यश दो शत्रु मार दो ॥११
शत्रुओं का नाश करो उत्कृष्ट बल दो हमें ।
रूप दो जय दो देवि ! यश दो शत्रु मारदो ॥१२॥

विधेहि देवि कल्याणं विधेहि परमां श्रियम् ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१३॥

विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं जनं कुरु ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१४॥

प्रचण्डदैत्यदर्पघ्ने चण्डिके प्रणताय मे ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१५॥

चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रसंस्तुते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१६॥

कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्भक्त्या सदाम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१७॥

हिमाचलसुतानाथसंस्तुते परमेश्वरि ।
रूप देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१८॥

सुरासुरशिरोरत्ननिघृष्टचरणेऽम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥१९॥

इन्द्राणीपतिसद्भावपूजिते परमेश्वरि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२०॥

देवि प्रचण्डदोर्दण्डदैत्यदर्पविनाशिनि ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२१॥

देवि भक्तजनोद्दामदत्तानन्दोदयेऽम्बिके ।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि ॥२२॥

पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम् ।
तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम् ॥२३॥

इदं स्तोत्रं पठित्वा तु महास्तोत्रं पठेन्नरः ।
स तु सप्तशतीसंख्यावरमाप्नोति सम्पदाम् ॥२४॥

इति देव्या अर्गलास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

कल्याण कीजिए देवि देओ श्री विपुला हमें ।
रूप दो जय दो देवि ! यश दो शत्रु मार दो ॥१३

यशस्वी और विद्यावान् लक्ष्मीवान् जनको करो ।
रूप दो जय दो देवि यश दो शत्रु मार दो ॥१४॥

दैत्यों का दर्पहरणी चण्डिके ! नमते मुझे ।
रूप दो जय दो देवि ! यश दो शत्रु मारदो ॥१५

चतुर्भुजे तू विधिसे हुई स्तुत महेश्वरि ।
रूप दो जय दो देवि ! यशदो शत्रु मारदो ॥१६॥

कृष्ण ने स्तुति की तेरी भक्तिपूर्वक अम्बिके ।
रूप दो जय दो देवि ! यश दो शत्रु मारदो ॥१७॥

शिव से भी हुई तू है पूजिता परमेश्वरी ।
रूप दो जय दो देवि ! यश दो शत्रु मार दो ॥१८॥

सुरासुर किरीटों से धृष्ट हैं पद आपके ।
रूप दो जय दो देवि ! यश दो शत्रु मारदो ॥१९॥

सद्भाव पूजिता है तू इन्द्र से परमेश्वरी ।
रूप दो जय दो देवि ! यश दो शत्रु मार दो ॥२०॥

प्रचण्ड भुजदण्डों के दैत्यों की मदनाशिनी ।
रूप दो जय दो देवि ! यश दो शत्रु मार दो ॥२१

भक्तों को आप देती हैं उत्कृष्टानन्द अम्बिके ।
रूप दो जय दो देवि ! यश दो शत्रु मार दो ॥२२

पत्नी मनोरमा देओ मनके अनुकूल हो ।
तारिणी दुर्ग संसार सिन्धुसे, कुलजात हो ॥२३॥

इसको पढके जो भी महास्तोत्र पढै नर ।
वही दुर्गा पाठ जप सम्पदा फल पायगा ॥२४॥

इति श्रीहरिशास्त्रिविरचित अर्गला स्तुति पूर्ण हुई ॥१॥

❀ अथ कीलकम् ❀

ॐ अस्य श्रीकीलकमन्त्रस्य शिव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहासरस्वती देवता,
श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थं सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ।

ॐ नमश्चण्डिकायै ॥

मार्कण्डेय उवाच

ॐ विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे ।
श्रेयः प्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्द्धधारिणे ॥१॥
सर्वमेतद्विजानीयान्मन्त्राणामभिकीलकम् ।
सोऽपि क्षेममवाप्नोति सततं जाप्यतत्परः ॥२॥
सिद्ध्यन्त्युच्चाटनादीनि वस्तूनि सकलान्यपि ।
एतेन स्तुवतां देवि स्तोत्रमात्रेण सिद्ध्यति ॥३॥
न मन्त्रो नौषधं तत्र न किञ्चिदपि विद्यते ।
विना जाप्येन सिद्ध्येत सर्वमुच्चाटनादिकम् ॥४॥
समग्राण्यपि सिद्ध्यन्ति लोकशङ्कामिमां हरः ।
कृत्वा निमन्त्रयामास सर्वमेवमिदं शुभम् ॥५॥
स्तोत्रं वै चण्डिकायास्तु तच्च गुप्तं चकार सः ।
समाप्तिर्न च पुण्यस्य तां यथावन्नियन्त्रणाम् ॥६॥
सोऽपि क्षेममवाप्नोति सर्वमेवं न संशयः ।
कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः ॥७॥
ददाति प्रतिगृह्णाति नान्यथैषा प्रसीदति ।
इत्थंरूपेण कीलेन महादेवेन कीलितम् ॥८॥
यो निष्कीलां विधायैनां नित्यं जपति संस्फुटम् ।
स सिद्धः स गणः सोऽपि गन्धर्वो जायते नरः ॥९॥
न चैवाप्यटतस्तस्य भयं क्वापीह जायते ।
नापमृत्युवशं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥१०॥
ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत न कुर्वाणो विनश्यति ।
ततो ज्ञात्वैव सम्पन्नमिदं प्रारभते बुधैः ॥११॥
सौभाग्यादि च यत्किञ्चिद् दृश्यते ललनाजने ।
तत्सर्वं तत्प्रसादेन तेन जाप्यमिदं शुभम् ॥१२॥
शनैस्तु जप्यमानेऽस्मिन् स्तोत्रे सम्पत्तिरुच्चकैः ।
भवत्येव समग्रापि ततः प्रारभ्यमेव तत् ॥१३॥
ऐश्वर्यं यत्प्रसादेन सौभाग्यारोग्यसम्पदः ।
शत्रुहानिः परो मोक्षः स्तूयते सा न किं जनैः ॥ॐ

इति देव्याः कीलकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

अथ कीलकस्तवप्रारम्भः—

शुद्ध ज्ञान तनूवाले त्रिवेदी दिव्य नेत्रवान् ।
श्रेयके हेतु सोमार्द्ध धारी शङ्कर को नमः ॥१॥
सबके जानने योग्य मन्त्रों का यह कीलक ।
वह भी क्षेम पाता है जो सदा जप में लगे ॥२॥
उच्चाटनादि सब ही उसके योग सिद्ध हों ।
इससे स्तुतिकर्ता की सिद्धि हो स्तोत्र मात्रसे ॥३॥
न मन्त्र औषध नहीं कुछ आवश्यक है यहां ।
बिना जप किये होते सिद्ध उच्चाटनादि हैं ॥४॥
सिद्ध होंगे सभी लोग शङ्कापै ध्यान दे हर ।
आमन्त्रित किया बोले सभी से यह श्रेष्ठ है ॥५॥
चण्डिका स्तोत्र इसको अति गूढ बना दिया ।
इसके पुण्य को पूर्ति न होगी यह जानिए ॥६॥
वह भी क्षेम पावेगा सभी भांति न संशय ।
कृष्ण चौदस या अष्टमी, को मानव ध्यान दे ॥७॥
दानप्रतिग्रह करै अन्यथा सिद्ध हो नहीं ।
ऐसे कीलकसे कील दिया शङ्कर ने इसे ॥८॥
कील को खोलके कोई जपता स्पष्ट जो इसे ।
होगा गण वही सिद्ध गन्धर्व बन बीच हो ॥९॥
सर्वत्र फिरते कोई भय होगा नहीं इसे ।
अपमृत्यु न पाता है मृत हो मोक्ष लाभ हो ॥१०॥
करै समझ प्रारम्भ तजै जो नष्ट हो सहो ।
इससे जानकर ही प्रारम्भ इसका करै ॥११॥
सौभाग्य आदि जो भी है कुछ कान्त समूह में ।
सब इसकी कृपासे है इससे यह जाप्य है ॥१२॥
धीरे जपेसे कुछ ही सम्पदा हो अतः इसे ।
उच्चैः पढै तो सम्पूर्ण पावे प्रारम्भ से इसे ॥१३॥
ऐश्वर्य जो सदा देवै सौभाग्य स्वास्थ्य सम्पदा ।
शत्रु नाश तथा मोक्ष उसे क्यों न भजैं जन ॥१४॥

इति श्रीहरिशास्त्रिविरचित हिन्दी दुर्गापाठ में
कीलकस्तुति पूर्ण हुई ।

❀ अथ देव्याः कवचम् ❀

ॐ अस्य श्रीचण्डीकवचस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप्छन्दः, चामुण्डा देवता, अङ्गन्यासोक्तमातरो बीजम्, दिग्बन्धदेवतास्तत्त्वम्, जगदम्बाप्रीत्यर्थे सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ।

ॐ नमश्चण्डिकायै ॥

मार्कण्डेय उवाच

ॐ यद्गुह्यं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम् ।
यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१॥

ब्रह्मोवाच

अस्ति गुह्यतमं विप्र सर्वभूतोपकारकम् ।
देव्यास्तु कवचं पुण्यं तच्छृणुष्व महामुने ॥२॥

प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी ।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम् ॥३॥

पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च ।
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम् ॥४॥

नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः ।
उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना ॥५॥

अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्ये गतो रणे ।
विषमे दुर्गमे चैव भयार्ताः शरणं गताः ॥६॥

न तेषां जायते किञ्चिदशुभं रणसंकटे ।
नापदं तस्य पश्यन्ति शोकदुःखक्षयंकरी ॥७॥

यैस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषां वृद्धिः प्रजायते ।
प्रेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना ॥८॥

ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना ।
माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना ॥९॥

ब्राह्मी हंससमारूढा सर्वाभरणभूषिता ।
नानाभरणशोभाढ्या नानारत्नोपशोभिताः ॥१०॥

दृश्यन्ते रथमारूढा देव्यः क्रोधसमाकुलाः ।
शङ्खं चक्रं गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधम् ॥११॥

खेटकं तोमरं चैव परशुं पाशमेव च ।
कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमम् ॥१२॥

दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च ।
धारयन्त्यायुधानीत्थं देवानां च हिताय वै ॥१३॥

अथ ब्रह्मकवचप्रारंभः

मार्कण्डेय बोले—

रक्षा कवच लोकों का निगूढतम है वही ।
किसीसे न कहा है जो पितामह मुझे कहो ॥१॥

ब्रह्मा बोले—

हे विप्र अति ही गूढ सबके उपकारक ।
पुण्य देवी कवच है उसे सुन महामुने ! ॥२॥

पहली शैलपुत्री है दूसरी ब्रह्मचारिणी ।
तीसरी चन्द्रघण्टा है चौथी कूष्माण्डिका कही ॥३॥

पांचवीं स्कन्दमाता है छठी कात्यायनी शिवा ।
सातवीं कालरात्री है गौरी है आठवीं महा ॥४॥

नवीं है सिद्धिदा ऐसे नव दुर्गा प्रसिद्ध हैं ।
ये नाम प्रोक्त हैं दिव्य, महात्मा विधिने स्वयम् ॥५

आग से जलते हों जो, शत्रु-आक्रान्त युद्ध में ।
घोर सङ्कटमें प्राप्त डरे शरण प्राप्त हों ॥६॥

उनको रणमें कोई अशुभ प्राप्त हो नहीं ।
न विपत्ति उन्हे आती सर्व दुःखं क्षयङ्करी ॥७॥

देवी को सुमरे शीघ्र समृद्धि उनको मिलै ।
प्रेतासना है चामुण्डा वाराही महिषासना ॥८॥

ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना ।
माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी मोरवाहना ॥९॥

ब्राह्मी हंसासना देवी सर्वाभरण सोहनी ।
नाना भूषण-शोभा को नाना रत्नच्छटाधरैं ॥१०॥

दीखती हैं रथारूढ देवियां क्रोधसे भरी ।
शंख चक्र गदाशक्ति हल मूसल खेटक ॥११॥

पाश तोमर परशु, धनु कुन्त त्रिशूल है ।
दानवोंके विनाशार्थ भक्तों के त्राण के लिए ॥१२

धारती हैं शस्त्र ऐसे देवों के हित के लिए ।
महोत्साहा बलवती महाभय विनाशिनी ॥१३॥

महाबले महोत्साहे महाभयविनाशिनि ।
त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणां भयवर्द्धिनि ।।१४।।
प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नेय्यामग्निदेवता ।
दक्षिणेऽवतु वाराहि नैर्ऋत्यां खड्गधारिणि ।।१५
प्रतीच्यां वारुणी रक्षेद् वायव्यां मृगवाहिनी ।
उदीच्यां पातु कौमारी ऐशान्यां शूलधारिणी ।।१६
ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा ।
एवं दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना ।।१७।।
जया मे चाग्रतः पातु विजया पातु पृष्ठतः ।
अजिता वामपार्श्वे तु दक्षिणे चापराजिता ।।१८
शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता ।
मालाधरी ललाटे च भ्रुवो रक्षेद् यशस्विनी।।१९।।
त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये यमघण्टा च नासिके ।
शङ्खिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोर्द्वारवासिनी ।।२०।।
कपोलौ कालिका रक्षेत्कर्णमूले तु शाङ्करी ।
नासिकायां सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका ।।२१
अधरे चामृतकला जिह्वायां च सरस्वती ।
दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठदेशे तु चण्डिका ।।२२

घण्टिकां चित्रघण्टा च महामाया च तालुके ।
कामाक्षी चिबुकं रक्षेद् वाचं मे सर्वमङ्गला । २३।।
ग्रीवायां भद्रकाली च पृष्ठवंशे धनुर्धरी ।
नीलग्रीवा बहिःकण्ठे नलिकां नलकूबरी ।।२४।।
खड्गधारिण्युभौ स्कन्धौ बाहू मे वज्रधारिणी ।
हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चाङ्गुलीषु च ।।२५
नखाञ्छूलेश्वरी रक्षेत्कुक्षौ रक्षेत्कुलेश्वरी ।
स्तनौ रक्षेन्महादेवी मनः शोकविनाशिनी ।।२६।।
हृदये ललिता देवी ह्युदरं शूलधारिणी ।
नाभिं च कामिनी रक्षेद् गुह्यं गुह्येश्वरी तथा ।।२७
भूतनाथा च मेढ्रं च गुदं महिषवाहिनी ।
कट्यां भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी ।।२८।।
जङ्घे महाबला प्रोक्ता जानुमध्ये विनायकी ।
गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे मितौजसी ।।२९।।

दुर्दर्शे रक्ष मुझको शत्रुको भयवर्द्धिनी ।
ऐन्द्री रक्षा करै पूर्व, अग्नि में अग्निदेवता ।।१४
वाराही दक्षिणा दिक् में नैरुत्यदिशि खड्गिनी
वारुणी पश्चिमा दिक् मे वायवी में मृगासना ।।१५
उदग्दिशामें कौमारी शैवी में शूलधारिणी ।
ब्रह्माणी ऊर्ध्वदिशि में नीचे में वैष्णवी रखै।।१६
रखै दशों दिशाओं में चामुण्डा शववाहनी ।
आगे रहै जया मेरे विजया पृष्ठ भाग में ।।१७।।
अजिता वाम में आवे दाहिने अपराजिता ।
शिखामें द्योतिनी रक्षा करै मस्तकमें उमा ।।१८।।
मालाधरी भालमध्य भ्रूकुटी में यशस्विनी ।
त्रिलोचना भोंहमध्य नासामे यमघण्टिका ।।१९।।
नेत्रों को शङ्खिनी रक्खै कानों को द्वारवासिनी ।
कपोलों को रखै काली शाङ्करी कर्णमूलमें ।।२०।।
सुधाकला अधरमें जिह्वामध्य सरस्वती ।
घण्टिका को चित्रघण्टा माया तालु प्रदेशमें ।।२१।।
भद्रकाली गर्दन को धन्विनी पृष्ठवंश में ।
कामाक्षी हनुको रक्खै वाणीको सर्वमंगला ।।२२
नीलग्रीवा कण्ठबहि (कण्ठ आगे) नली को नल कूबरी ।
स्कन्धप्रदेशमें खडगधारिणी बाहु वज्रिणी ।।२३।।
हाथों को दण्डिनी रखै अंगुली सब अम्बिका ।
नख शूलेश्वरी रक्खै कोंख रक्खै नलेश्वरी ।।२४।।
स्तन रक्खै महादेवी मनको शोकनाशिनी ।
ललिता उरको रक्खै पेटको शूलधारिणी ।।२५।।
कामिनी नाभिको रक्खै गुह्यं शी गुह्यदेश को ।
भूतनाथा मेढ्र रखै गुदा महिषवाहनी ।।२६।।
कटी भगवती रक्खै जानुको विन्ध्यवासिनी ।
बिनायकी जानु बीच जंघाओं को महाबला ।।२७
टखनों को नारसिंही पाद पृष्ठ मितौजसी ।
श्रीधरी पादशाखाएँ पादनीचे तलेश्वरी ।।२८।।
नखों को क्रूरदाढों की केशों को ऊर्ध्वकेशिनी ।
कौबेरी रोमकूपों को चर्म वागीश्वरी रखै ।।२९।।

पादाङ्गुलीः श्रोधरी च पादाधस्तलवासिनी ।
नखान् दंष्ट्राकराली च केशांश्चैवोर्ध्वकेशिनी ॥३०

रोमकूपेषु कौबेरी त्वचं वागीश्वरी तथा ।
रक्तमज्जावसामांसान्यस्थिमेदांसि पार्वती ॥३१॥

अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी।
पद्मावती पद्मकोषे ककफे चूडामणिस्तथा ॥३२॥

ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसन्धिषु ।
शुक्रं ब्रह्माणि मे रक्षेच्छायां छत्रेश्वरी तथा ॥३३

अहंकारं मनो बुद्धिं रक्षेन्मे धर्मधारिणी ।
प्राणापानौ तथा व्यानसमानोदानमेव च ॥३४॥

यशः कीर्तिं च लक्ष्मीं च सदा रक्षतु चक्रिणी ॥
गोत्रमिन्द्राणि मे रक्षेत्पशून्मे रक्ष चण्डिके । ॥३५

पुत्रान् रक्षेन्महालक्ष्मीर्भार्यां रक्षतु भैरवी ।
मार्गं क्षेमकरी रक्षेज्जिद्वया सर्वतः स्थिता ॥३६॥

रक्षाहीनं तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन च ।
तत्सर्वं रक्ष मे देवि जयन्ती पापनाशिनी ॥३७॥

पदमेकं न गच्छेत्तु यदीच्छेच्छुभमात्मनः ।
कवचेनावृतो नित्यं यत्र यत्रैव गच्छति ॥३८॥

तत्र तत्रार्थलाभश्च विजयः सार्वकामिकः ।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम्॥३९

परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यते भूतले पुमान् ।
निर्भयो जायते मर्त्यः संग्रामेष्वपराजितः ॥४०॥

त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्यः कवचेनावृतः पुमान् ।
इदं तु देव्याः कवचं देवानामपि दुर्लभम् ॥४१॥

यः पठेत्प्रयतो नित्यं त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः ।
दैवी कला भवेत्तस्य त्रैलोक्येष्वपराजितः ॥४२॥

जीवेद् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः ।
नश्यन्ति व्याधयः सर्वे लूताविस्फोटकादयः ॥४३॥

स्थावरं जङ्गमं चैव कृत्रिमं चापि यद्विषम् ।
अभिचाराणि सर्वाणि मन्त्रयन्त्राणि भूतले ॥४४

भूचराः खेचराश्चैव जलजाश्चोपदेशिकाः ।
सहजा कुलजा माला डाकिनी शाकिनी तथा ॥४५

रक्त मज्जा वसा मांस अस्थि आदिक पार्वती ।
अन्त्रालिको कालरात्री पित्तको मुकुटेश्वरी ॥३०॥

पद्मावती पद्मकोष कफ चूडामणी स्वयम् ।
ज्वालामुखी नखज्वाला अभेद्या सब सन्धि में ॥३१

ब्रह्माणी शुक्र को रखे छाया छत्रेश्वरी रखे ।
अहङ्कार मनो बुद्धि रखें श्रीधर्मचारिणी । ३२॥

प्राणापान तथा व्यान समानोदान को तथा ।
यश लक्ष्मी और कीर्ति करें रक्षित चक्रिणी ॥३३

इन्द्राणी गोत्रको रखे पशुमण्डल चण्डिका ।
पुत्र रक्षा करें लक्ष्मी भार्या रक्षण भैरवी ॥३४॥

क्षेमङ्करी मार्गमध्य विजया सब ओर से ।
रक्षारहित जो स्थान होवे कवच वर्जित ॥३५॥

करे सकल की रक्षा जयन्ती पापनाशिनी ।
निजका श्रेय चाहे तो अरक्षित चले नहीं ॥३६।

कवचावृत हो नित्य जावे नर जहां जहां ।
वहां वहां अर्थलाभ जय हो सब काम में ॥३७॥

जोजो चिन्तित हों काम वही निश्चय से मिलै ।
ऐश्वर्य्य भी अतुल ही पाता है वह भूमिपै ॥३८॥

निर्भीक नर होता है हारता रण में नहीं ।
त्रिलोकी में पूज्य होता कवचावृत मानव ॥३९॥

यह देवी-कवच है देवोंको भी अलभ्य है ।
जो पढ़ें ध्यान से नित्य श्रद्धायुक्त त्रिकाल में ॥४०

दैवी कला प्राप्त उसे मिले जय त्रिलोक में ।
एकसौ वर्षसे आगे अपमृत्यु बिना जिये ॥४१॥

लूता विस्पोट इत्यादि व्याधियां सब नष्ट हों ।
बनावटी विष तथा विष स्थावर जङ्गम ॥४२॥

परकृत्य सभी मन्त्र यन्त्र भूतल पै सभी ।
भूचारी खेचर तथा जलजा उपदेशिका ॥४३॥

सहजा कुलजा माला डाकिनी शाकिनी सभी ।
नभचारी और घोर डाहनें बलपूर्ण भी ॥४४॥

ग्रहभूतपिशाचादि यक्ष गन्धर्व राक्षस ।
ब्रह्मराक्षस वेताल कुष्माण्डो भैरवादि भी ॥४५॥

अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महाबलाः ।
ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः ॥४६॥
ब्रह्मराक्षसवेताला: कूष्माण्डा भैरवादयः ।
नश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते ॥४७॥
मानोन्नतिर्भवेद् राज्ञस्तेजोवृद्धिकरं परम् ।
यशसा वर्द्धते सोऽपि कीर्तिमण्डितभूतले ॥४८॥
जपेत्सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचं पुरा ।
यावद्भूमण्डलं धत्ते सशैलवनकाननम् ॥४९॥
तावत्तिष्ठति मेदिन्यां सन्ततिः पुत्रपौत्रिकी ।
देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ॥५०॥
प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादतः ।
लभते परमं रूपं शिवेन सह मोदते ॥ॐ॥५१॥
इति देव्याः कवचं सम्पूर्णम् ।

भागते हैं देखते ही जिन्हें कवच सिद्ध हों ।
राजा से मान पाताहै तेज वृद्धि करै सदा ॥४६॥
यश की वृद्धि पाता है कीर्ति मण्डित भूमिपै ।
पढै पूर्व कवच को पीछे सप्तशती पढै ॥४७॥
यावद्धरा मण्डलपै रहैंगे वन शैल ये ।
तावत् रहैगो उसकी पुत्रपौत्रादि सन्तति ॥४८॥
मरने पै वही स्थान जो दुर्लभ सुरादि को ।
वह मानव पाता है महामाया प्रसाद से ॥४९॥

इति श्रीहरिशास्त्रिविरचित हिन्दी दुर्गा पाठ में
ब्रह्मकवच पूर्ण हुआ ।

❀ अथ वेदोक्तं रात्रिसूक्तम् ❀

श्रीहरिशास्त्रिणानूदितो दुर्गापाठः

ॐ रात्रीत्याद्यष्टर्चस्य सूक्तस्य कुशिकः सौभरो रात्रिर्वा भारद्वाजो ऋषिः रात्रिर्देवता
गायत्री छन्दः देवीमाहात्म्यपाठे विनियोगः ।

ॐ रात्रि व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः ।
विश्वा अधि श्रियोऽधित ॥१॥
अर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युद्वतः ।
ज्योतिषा बाधते तमः ॥२॥
निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती ।
अपेदु हासते तमः ॥३॥
सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि ।
वृक्षे न वसति वयः ॥४॥
नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः ।
नि श्येनासश्चिदर्थिनः ॥५॥
यावयावृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये ।
अथा नः सुतरा भव ॥६॥
उपमा पेपिसत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित ।
उषऋणेवयातय ॥७॥
उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः ।
रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥८॥

ॐ रात्री आती देखती है तारों की दृष्टिसे जगत ।
बहुधा, सब शोभाएँ यही धारण हैं किए ॥१॥
अमर्त्या वह देवी ही ऊंचे नीचे बडे लघु ।
पदार्थ ढाँप लेती है ज्योतिसे तम नाशती ॥२॥
वही रात्री भगवती प्रगटाती उषा स्वसा ।
उषाके स्पष्ट होतेहो निशाका तम भागता ॥३॥
जिसके प्राप्त होनेसे सुखसे घरमें बसें ।
जैसे संसार–वृक्षोंमें पंक्षी गण सुखी रहें ॥४॥
जैसे गांव सभी सोवे पशु भी पक्षिवृन्द भी ।
बाज से पंख फैलाये स्वार्थ साधक लोक भी ॥५॥
अये माता रात्रि देवी वृक के साथ वृक्य को ।
पृथक् निकालो हमसे, हमको सुखदा रहो ॥६॥
यह काला तम हमें समुपस्थित होगया ।
हे उषे ! ऋण के तुल्य इसकी दूर कीजिए ॥७॥
गौके सम तुम्हें पास आता मैं संमुखी करूँ ।
हे रात्रि मेरे स्तव सा हवि भी लीजिए स्वयम् ॥८

इति रात्रि सूक्तं ।

यह रात्रि सूक्त ऋक् संहिता का है ।
इसकी अधिष्ठात्री देवता भगवती है ।
अब नवार्ण मन्त्र का विनियोग लिखते हैं—
इस दुर्गा नवाक्षर मन्त्र के ऋषि तीन हैं ।
ब्रह्मा विष्णु रुद्र; छन्द; गायत्री और उष्णिग् ॥१
अनुष्टुप् हैं, देवताऐं काली लक्ष्मी सरस्वती ।
नन्दा शाकम्भरी भीमा, शक्तियां तीन हैं तथा ॥२
रक्तदन्ती और दुर्गा भ्रामरी तीन बीज हैं ।
अग्नि वायु तथा सूर्य इसके तीन तत्त्व हैं ॥३॥
अभीष्ट लाभ सिद्धयर्थं इसका विनियोग है ॥४॥
ऐंह्रींक्लीं चामुण्डायै विच्चे यह नवार्ण मन्त्र
दुर्गा महामाया का प्रधान मन्त्र है । इसके न्यास
करके दुर्गापाठ करने वाला साधक ध्यान करै
फिर मन्त्र जपे १०८ वार ।

प्रथमोऽध्यायः

विनियोगः

ॐ प्रथमचरित्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, महाकाली देवता, गायत्री छन्दः, नन्दा शक्तिः, रक्तदन्तिका बीजम्, अग्निस्तत्त्वम् ऋग्वेदः स्वरूपम्, श्रीमहाकालीप्रीत्यर्थे प्रथमचरित्रजपे विनियोगः ।

❀ ध्यानम् ❀

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम् ।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम् ।

प्रथम चरित की देवता महाकाली का ध्यान—

खड्ग बाण गदा शूल शंख चक्र सुदण्ड भी ।
भुशुण्डी कार्मुक शिर हाथोंमें धारती हुई ॥१॥

तामसी सांवली शक्ति महामाया महेश्वरी ।
दशपाद दशभुजा देवी दशमुखी शिवा ॥२॥

जिह्वा लहलहाती है बिखरे केश पीठ पै ।
दिगम्बरा महाकाली विशालाक्षी महाभया ॥३॥

प्रदीप्त दाढ दांतों से प्रकाश करती दिशा ।
विशाल होठ प्रान्तों से रक्त की धार वर्षती ॥४॥

मुण्डमाला पहनती शव शङ्करपै चढी ।
भीषणा प्रेत हाथों की रसना पहने हुए ॥५॥

अट्ट हास करै चण्डी भक्तके भयहारिणी ।
वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि कहती उच्चनाद से ॥६॥

ज्ञान प्रदान करती हरती भक्त कष्टको ।
मनोरथ मयी सिद्धि देती है ध्यान मात्र से ॥७॥

महाकाली महाशक्ति आद्या प्रकृतिको भजूं ।
घोर चीत्कार करती शिवाओं से घिरी हुई ॥८॥

श्रीगणेशायनमः ॥ अथ हिन्दी दुर्गापाठ, प्रथम अध्याय प्रारम्भ—

विष्णु सम्मोह जननी मधुकैटभ नाशिनी ।
ब्रह्मा का त्राण करणी, कालिका को नमोनमः ॥

(भगवान् व्यास के शिष्य जैमिनि श्रीव्यास के मुख से सभी धर्मों का विवरण सुनकर शेष कुछ प्रश्नों को पूछने के लिए महर्षि मार्कण्डेय के पास पहुँचे, तब मार्कण्डेय ने भगवती के ध्यान स्थित होने के कारण अवकाश न देखकर विन्ध्याचल की गुफा में अपने चार शिष्यों के पास जैमिनी को (जो पक्षी रूप में वहां रहते थे) भेजा । उन पक्षियों ने मार्कण्डेय भागुरि सम्वाद प्रारम्भ कर मन्वन्तरों की कथा के प्रसंग में आठवें सावर्णि मन्वन्तर की कथा सुनाते हैं—मार्कण्डेय उवाच इत्यादि)

ॐ नमश्चण्डिकायै

'ॐ ऐं' मार्कण्डेय उवाच ॥१॥

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः ।
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम ॥२॥

महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः ।
स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः ॥३॥

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः ।
सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते क्षितिमण्डले ॥४॥

तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ।
बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा ॥५॥

तस्य तैरभवद् युद्धमतिप्रबलदण्डिनः ।
न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥६॥

ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत् ।
आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः ॥७॥

अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः ।
कोशो बलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः ॥८॥

ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः ।
एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम् ॥९॥

स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेधसः ।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम् ॥१०॥

तस्थौ कंचित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः ।
इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥११

सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतनः ।
मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत् ॥१२॥
मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा ।
न जाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः ॥१३॥

मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते ।
ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः ॥१४॥
अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम् ।
असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम् ॥१५॥

संचितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति ।
एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः ॥१६॥

ॐ नमश्चण्डिकायै

मार्कण्डेय बोले (१)

सूर्य का पुत्र सावर्णि कहता आठवां मनु पूरी
बतावें उसकी उत्पत्ति मुझ से सुनो ॥१॥ मंत्र २

जैसे मन्वन्तराधीश महामाया प्रभावसे बडभागी
वह हुवा सावर्णि रवि का सुत ॥२॥ मं० ३ ।

स्वारोचिष अन्तर में पहले चैत्रवंश में ।
सारे धरामण्डल में हुआ सुरथ भूपति ।३ मं० ४॥

अपने तनूजों जैसे प्रजाको पालते हुए ।
कोला विध्वंसि भूपाल उसके शत्रु होगये ।४। मं०५

युद्ध प्रबल दण्डी भी उसका उनसे हुआ ।
थोडेसे शत्रुओंसे भी युद्ध हारगया वह ।५।मं. ६॥

अपने पुरमें आया स्वराष्ट्रपति ही रहा ।
वहां भी वह आक्रान्त हुआ रिपु समूहसे ।६।मं.७।

बली दुर्जन दुष्टात्मा उसके मन्त्रिवृन्दने ।
कोष सैन्य सभी छीना वहां निजपुरस्थ का,।७।मं.८

आखेट का मिष लिए प्रभुताहीन भूपति ।
इकेला चढ घोडेपै घने जंगल में गया ।८। मं. ९॥

वहां महर्षि मेधाका देखा आश्रम भूपने ।
भराथा मुनिशिष्यों से शान्त श्वापद थे जहां ।१०।

आतिथ्य पाया मुनिसे कुछकाल वहीं रहा ।
यहां वहां विचरता मुनि आश्रम बीच ही ॥११॥

ममताधीन मनसे वह यों सोचता रहा ।
पूर्वजोंने जिसे पाला वह मुझसे विहीन हो ॥१२॥
पुर मेरे कुभृत्यों से है सुरक्षित या नही ।
न जानें वह मातङ्ग शूर मेरा सदामदी ॥१३॥

वैरियों के वशपडा कौन से भोग पा रहा ।
मेरे सेवक पाते थे धन भोग प्रसाद जो ॥१४॥
वे आज और भूपों के चलते अनुकूल हैं ।
उन दुर्व्ययशीलोंके सदा व्यय प्रयोग से ॥१५॥

दुःख सञ्चित भी मेरे कोषका क्षय होयगा ।
सोचता ही रहा राजा यहभी और ओरभी ॥१६

तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः ।
स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः ॥१७॥
सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे ।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम् ॥१८॥
प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम् ॥१९॥

वहीं आश्रम के पास एक वैश्य दिखा उसे ।
पूछा हो कौन है हेतु यहां आगम का कहो ॥१७॥
शोकपीडितसे क्यों हो दुर्मना दीखते मुझे ।
ऐसो प्रेमभरी वाणी सुनके क्षितिपालकी ॥१८॥
नृपको उत्तर दिया विनयानत वैश्यने ॥१९॥

वैश्य उवाच ॥२०॥

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले ॥२१॥
पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः ।
विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम् ॥२२॥
वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः ।
सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम् ॥२३
प्रवृत्तिं स्वजनानां च दाराणां चात्र संस्थितः ।
किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम् ॥२४॥
कथं ते किं नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः ॥२५

वैश्य बोला मं० ॥२०॥

समाधि नाम मैं वैश्य धनवान् कुल जातहूँ ॥२१॥
दुःशील पुत्रदारों ने निकाला धन लोभसे ।
हीन हूं धनदारों से पुत्रोंने धन लेलिया ॥२२॥
दुःखी हो वनमें आया तजा बान्धववर्ग ने ।
न जानता मैं पुत्रोंकी प्रवृत्ति सुखदुःखकी ॥२३॥
सुजनों सुतदारों की आश्रमस्थ हुआ यहां ।
उनके घरमें क्षेम अक्षेम वा है अभी ॥२४॥
कैसे हैं वे सदाचारी अथवा हीनवृत्त हैं ॥२५॥

राजोवाच ॥२६॥

यैर्निरस्तो भवांल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः ॥२७॥
तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम् ॥२८॥

राजा बोला ॥२६॥

धनहेतु निकाला है पुत्रदारादिने तुम्हें ॥२७॥
उन्होमें अब क्यों चित्त तुम्हारा स्नेह बांधता ॥२८

वैश्य उवाच ॥२९॥

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः ॥३०॥
किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः ।
यैः संत्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः ॥३१॥
पतिस्वजनहार्दं च हार्दि तेष्वेव मे मनः ।
किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते ॥३२॥
यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु ।
तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते ॥३३॥
करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम् ॥३४

वैश्य बोला मं० ॥२९॥

ऐसी ही है हमारी जो कहते आप बात हैं ॥३०॥
क्या करूं मन मेरा तो धरै निष्ठुरता नही ।
जो छोड पितृका स्नेह पति स्वजन प्रेमभी ॥३१॥
निकाला धन तृष्णासे उन्हीमें मन स्निग्ध है ।
क्यों मैं यह नहीं जानूं ज्ञानवान् भी महामते ! ॥३२
निर्गुणी भी बन्धुओं में मन स्नेह बांधता ।
उन्हीपै यह निःश्वास और व्याकुल चित्त है ॥३३
क्या करूं उन रूखों में मन निष्ठुर हो नही ॥३४

मार्कण्डेय उवाच ॥३५॥

ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ ॥३६॥
समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः ।
कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम् ॥३७
उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥३८॥

मार्कण्डेय बोले मं० ॥३५॥

तब वे साथ ही विप्र ! गये मुनि समीप में ॥३६॥
समाधि बनियां और वह राजन्यरत्न भी ।
नीतियुक्त यथा योग्य बातें कर मुनीश से ॥३७॥
बैठे वैश्य महीपाल कथाऐं करने लगे ॥३८॥

राजोवाच ॥३६॥

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत् ॥४०॥
दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना ।
ममत्वं गतराज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि ॥४१
जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मनिसत्तम ।
अयं च निकृतः पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः ॥४२॥
स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति ।
एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ ॥४३॥
दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ ।
तत्किमेतन्महाभाग यन्मोहो ज्ञानिनोरपि ॥४४॥
ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता ॥४५॥

राजा बोले मं० ॥३६॥

भगवन् मैं तुम्हें पूछूँ एक बात बताइये ॥४०॥
बिना मननिरोधे जो मनके दुःख के लिए ।
मेरा राज्य गया तोभी राज्याङ्गोंमें ममत्व है ॥४१
जानते अज्ञके जैसे यह क्यों है महामुने ।
यह भी त्यक्त है पुत्रों और भृत्य स्वदारसे ॥४२॥
बिछुडा स्वजनों से भी उन्हींमें प्रेमवान हैं ।
मुझे और इसे दोनोंको ही अत्यन्त दुःख है ॥४३॥
दोष दीखे विषय में ममताधीन चित्त हैं ।
मोह हो ज्ञानियों में भी यह कैसे महामुने ! ॥४४॥
अज्ञानान्ध हुए मेरी इसकी यह मूढता ॥४५॥

ऋषिरुवाच ॥४६॥

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे ॥४७॥
विषयश्च महाभाग याति चैवं पृथक् पृथक् ।
दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे ॥४८
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ।
ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं तु ते न हि केवलम् ॥४९
यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः ।
ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम् ॥५०
मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः ।
ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु ॥५१
कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा ।
मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषा सुतान् प्रति ॥५२
लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतान् किं न पश्यति ।
तथापि ममतावर्ते मोहगर्ते निपातिताः ॥५३॥

महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा ।
तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः ॥५४॥
महामाया हरेश्चैषा तया संमोह्यते जगत् ।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ॥५५॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम् ॥५६॥

ऋषि बोले मं० ॥४६॥

ज्ञान है सब जीवों में विषयों के प्रयोग का ॥४७
महामते विषय भी प्राप्त होते जुदा जुदा ।
दिवान्ध हैं कई प्राणी और रात्र्यन्ध हैं कई ॥४८
दिनरात्र्यन्ध हैं कई प्राणवान् समदृष्टि हैं ।
ज्ञानी मतुज हैं सत्य किन्तु केवल वे नहीं ॥४९॥
क्योंकि सभी ज्ञानवाले पशुपक्षिमृगादि हैं ।
ज्ञान जो मनुजों के है मृगपक्ष्यादिके वही ॥५०॥
जो मृगादिक में ज्ञान दोनोंमें तुल्य है वह ।
ज्ञान होते इन्हे देखो खग ये शिशु चोंचमें ॥५१॥
दाना ला डालते ही है क्षुधापीडित भी हुए ।
योंही नर नरश्रेष्ठ पुत्रों में साभिलाष हैं ॥५२॥
लोभी प्रत्युपकारार्थ क्या नहीं देखते इन्हे ?
पडे हैं फिर भी ममता चक्रवान् मोहगर्त में
(खड्डे में) ॥५३॥

संसार की स्थितिकारी महामाया प्रभाव से ।
यहां आश्चर्य न करो योगनिद्रा महेश्वर ॥५४॥
हरिकी यह माया है जगको यह मोहती ।
मनको ज्ञानियों के भी देवी भगवती वही ॥५५॥
महामाया डालती है मोहमें खींचके बलात् ।
रचती यह माया ही है चराचर विश्व को ॥५६॥

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये ।
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी ॥५७॥
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥५८॥

राजोवाच ॥५९॥

भगवन् का हि सा देवि महायायेति यां भवान् ।६०।
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च किं द्विज ।
यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा ॥६१॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ॥६२

ऋषिरुवाच ॥६३॥

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम् ॥६४॥
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम ।
देवानां कार्यसिद्धयर्थमाविर्भवति सा यदा ॥६५॥
उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते ।
योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ॥६६॥
आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान् प्रभुः ।
तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ ॥६७॥
विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ ।
स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ६८
दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम् ।
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः ॥६९॥
विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम् ।
विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम् ॥७०
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः ॥७१॥

ब्रह्मोवाच ॥७२॥

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधामात्रात्मिका स्थिता ।
अर्धमात्रा स्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ॥७४॥
त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा ।
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत् ॥७५॥
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा ।
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्व स्थितिरूपा च पालने ॥७६॥

यही प्रसन्ना वर दे नरों की मुक्तिके लिए ।
यही विद्या परा मुक्तिहेतु होती सनातनी ॥५७॥
संसार बन्ध की हेतु यही सर्वेश्वरी ॥५८॥

राजा बोला ॥५९॥

भगवन् ! कौन है देवी महामाया जिसे कहें ॥६०॥
कैसे उत्पन्न होती है इसके काम क्या द्विज ? ।
कहां से उद्भव हुवा क्या प्रभाव स्वरूप क्या ॥६१
सभी मैं सुनना चाहूं ब्रह्मज्ञ वर आपसे ॥६२॥

ऋषि बोले ॥६३॥

नित्या वह जगन्मूर्ति उसीने सब है रचा ॥६४॥
तो भी उत्पत्ति उसकी बहुवा मुझसे सुनो ।
देवों के काम करने होती प्रगट है तभी ॥६५॥
नित्या भी वह उत्पन्न कहाती इस लोक में ।
समुद्र मात्र जगमें शेष-विस्तर पै हरि ॥६६॥
कल्पान्तमें योगनिद्रा सेरहे थे महाप्रभु ।
तब केशव के कर्णमल संजात दैत्य दो ॥६७॥
मधु-कैटभ ब्रह्माको मारनेको खडे हुए ।
वहां केशवके नाभिपद्मस्थित विरंचिने ॥६८॥
देख दारुण दैत्यों को और निद्रित विष्णुको ।
एकाग्रमन से योगनिद्रा को स्तुतियां पढो ॥६९॥
प्रबोधनार्थ हरिके हरिनेत्रनिवासिनी ।
विश्वेश्वरी जगद्धात्री स्थिति संहारकारिणी ॥७०
उस निद्रा भगवती विष्णु तैजस शक्तिकी ॥७१॥

ब्रह्मा बोले ॥७२॥

तू स्वाहा तू स्वधा तूही वषट् तू ही स्वरात्मिका ॥
तू सुधा अक्षरे नित्ये तीन मात्रा स्वरूपिणी ।
अर्धमात्रा तुही मातः जो अवाचा विशेष है ॥७४
तू सन्ध्या और सावित्री देवि ! तू जननी परा ।
तू ही जगद्धारती है तू ही है रचती जगत् ॥७५॥
तूही है पालती तूही खाती है अन्त में सदा ।
विसृष्टि में सृष्टि तू है स्थिति पालनमें तु ही ॥७६॥

तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ।
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ॥७७॥

महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ।
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ॥७८॥

कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ।
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ७९

लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्व शान्तिः क्षान्तिरेव च ।
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ॥८०

शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा ।
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ॥८१

परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ।
यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके ॥८२॥

तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा ।
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत् ॥८३

सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ।
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ॥८४॥

कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्।
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ॥८५॥

मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ।
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ॥८६॥

बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ॥८७॥

ऋषिरुवाच ॥८८॥

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा ॥८९॥
विष्णोः प्रबोडनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ ।
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ॥९०॥
निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः ॥९१॥
एकार्णवेऽहिशयनात्ततः स ददृशे च तौ ।
मधुकैटभौ दुरात्मावतिवीर्यपराक्रमौ ॥९२॥
क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ ।
समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ॥९३॥

जगन्मये ! जगत् की तू अन्त संहार रूपिणी ।
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृति ॥७७॥

महामोहस्वरूपा तू महादेवी महासुरी ।
तू है प्रकृति सबकी गुणोंको योजिका तु ही ॥७८॥

कालरात्री महारात्री मोहरात्री भयङ्करी ।
तू श्रीः तू ईश्वरी तूही बुद्धि तू बोधलक्षणा
(बोधकारिणी) ॥७९॥

लज्जा पुष्टि तूहीं तुष्टि तू शान्ति क्षान्तिरूप तू ।
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रधारिणी ॥८०

शंखिनीं चापिनी बाण भुशुण्डी दण्डधारिणी ।
सौम्या तू अति सौम्या तू सौम्योंमें भी सुरूपिणी

परों को भी परा तू है परमा परमेश्वरी ।
कुछ भी जो कहीं वस्तु सदसत्सर्वरूपिणी ॥८२॥

सबकी शक्ति तूही है मैं तेरी स्तुति क्या करूं ।
तूने जो जगका कर्ता भर्ता संहारकारक ॥८३॥

उसे निद्रावश किया कौन तेरी करै स्तुति ।
विष्णुको मुझको देहधारी शङ्करको किया ॥८४॥

उसकी स्तुति गानेको कौन सामर्थ्य युक्त है ।
ऐसे तू स्वप्रभावों से उदारों से हुई स्तुता ॥८५॥

मोहले इस दुर्धर्ष मधुकैटभ युग्म को ।
प्रबोधको प्राप्तकर शीघ्रही विष्णुदेवको ॥८६॥

इसको ज्ञानदे शीघ्र मधुकैटभ नाशका ॥८७॥

ऋषि बोले ॥८८॥

ऐसे स्तुत हुई देवी तामसी ब्रह्मदेव से ॥८९॥
मधुकैटभ नाशार्थ विष्णुके बोधके लिए ।
नेत्र नासा मुख भुजा उरसे बाह्य हो वही ॥९०॥
अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके दृष्टिमें व्यक्त होगई ।
उठ बैठे जगन्नाथ उससे परिमुक्त हो ॥९१॥
एकाब्धिमें शयन से फिर देखे मुरारि को ।
मधुकैटभ दुष्टात्मा बहुवीर्य पराक्रमी ॥९२॥
क्रोध से लाल दृग्वाले विधिको मारने उठे ।
उठते उन दोनों से लड़े श्रीभगवान् हरि ॥९३॥

पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ।
तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ॥९४॥
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ॥९५

श्रीभगवानुवाच ॥९६॥

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि ॥९७॥
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम ॥९८॥

ऋषिरुवाच ॥९९॥

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमांपोमयं जगत् ॥१००
विलोक्य ताभ्यां गदितो भनवान् कमलेक्षणः ।
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता ॥१०१॥

ऋषिरुवाच ॥१०२॥

तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता ।
कृत्वा चक्रेण वै च्छिन्ने जघने शिरसी तयोः १०३
एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् ।
प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते ।ऐंॐ।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये मधुकैटभवधो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥

उवाच १४, अर्धश्लोकाः २४, श्लोकाः ६६ ॥
एवमादितः ॥१०४॥

बाहुयुद्ध किया पांच हजार तक वत्सर ।
मायासे मोहित हुए वे महा मदमत्त भो ॥९४॥
बोले केशव को कोई हमसे वर मांगलो ॥९५॥

भगवान् बोले ॥९६॥

तुष्ट हो तो तुम अभी मुझसे वध्य होइये ॥९७॥
क्या मुझे अन्य वरसे वर मेरा यही सही ॥९८॥

ऋषि बोले ॥९९॥

यों वञ्चित हुऐ दोनों सर्वत्र जल विश्वमें ॥१००॥
देख ने बात यों बोले भगवान् कमलाक्षको ।
जहां जल न हो भूपै हमको मारिये वहीं ॥१०१॥

ऋषि बोले ॥१०२॥

शङ्ख-चक्र गदाधारी हरि ने 'अस्तु' बोलके ।
चक्रसे शिर दोनोंका काट डाला स्वजंघपै ॥१०३
ऐसे यह समुत्पन्न हुई स्तुति विरिंचिसे ।
प्रभाव इस देवीका सुन और कहूं तुझे ॥१०४॥

श्रीहरिशास्त्रिविरचित हिन्दीदुर्गापाठ में प्रथम अध्याय पूर्ण । श्रीः ॥

द्वितीयोऽध्यायः

(मध्यमचरित्रप्रारम्भः)

अस्य श्रीमध्यमचरित्रस्य विष्णुः ऋषिः उष्णिक् छन्दः महालक्ष्मीर्देवता शाकम्भरी शक्तिः दुर्गाबीजं वायुस्तत्वं यजुर्वेदः स्वरूपं श्रीमहालक्ष्मीप्रीत्यर्थे मध्यमचरित्रपाठे विनियोगः ।

ध्यानम्

ॐ अक्षस्रक्परशू गदेषुकुलिशं
पद्मं धनुः कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं
घण्टां सुराभाजनम् ।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं
हस्तैः प्रवालप्रभां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह
महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम् ॥१॥

ऋषिरुवाच । मन्त्रः १

देवासुरमभूद् युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा
महिषेऽसुराणामधिपे देवानाञ्च पुरन्दरे ॥२॥
तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम्
जित्वा च सकलान्देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः ॥३॥
ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम् ।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ ॥४॥

मध्यमचरित्रप्रारम्भ

इस मध्यम चरित्र का ऋषि विष्णु, छन्द उष्णिक् देवता महा लक्ष्मी, शक्ति शाकम्भरी, बीज दुर्गा तत्व वायुः स्वरूप यजुर्वेद और श्रीमहालक्ष्मी के प्रसन्नतार्थ विनियोग है ।

ध्यान

अक्षमाला पद्म बाण खड्ग वज्र गदा तथा ।
चक्र त्रिशूल परशु बांए नौ हाथ धरती ॥१॥
शंख घण्टा तथा पाश बरछी दण्ड ढाल भी ।
चाप ज्वाला कुम्भ घटे दाहिने नव हाथ हैं ॥२॥
अठारह भुजा देवी महालक्ष्मी मनोहरा ।
सर्वदेवमयी चन्द्रसमान मुखधारिणी ॥३॥
पद्मासना स्थित हुई पासमें सिंहरक्षिणी ।
स्वर्ण रत्नजडे नाना गहने पहने हुई ॥४॥
महिषासुर संहारकारिणी विश्वमोहनी ।
अपने नतभक्तों को निर्भीक करती हुई ॥५॥
पुष्पों को वर्षते देव संघसे संस्तुता हुई ।
साधकोंको सर्व सुख प्रदान करती हुई ॥६॥
महामाया महारात्री सर्वदुःख निवारिणी ।
भक्तोंकी स्मृतिमें आई देती जो सर्व सम्पदा ॥७॥
वरदानोन्मुखी माता करुणा रस से सनी ।
महालक्ष्मी परम्बाका मनमें ध्यान मैं करूं ॥८॥

ऋषि बोले । मन्त्र १ ।

पहले पूर्ण सौ वर्ष, हुवा युद्ध सुरासुरो ।
दैत्याधिराट् महिषमें देवाधीश महेन्द्र में ॥२॥
वहां वलिष्ठ दैत्योंने देव सेना परास्त की ।
जय पा सब दैवोंपै बना महिष देवराट् ॥३॥
पराजित हुए देव पद्मयोनि विरञ्चिको ।
आगे कर, गये सारे जहां शङ्कर विष्णु थे ॥४॥

यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् ।
त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ॥५॥

महिषासुर की चेष्टा जो हुई जितनी हुई ।
सुनाई सब देवों ने सविस्तर पराभव ॥५॥

सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च ।
अन्येषाञ्चाधिकारांश्च स्वयमेवाधितिष्ठति ॥६॥

सूर्य चन्द्राग्नि अनिल यम और जलेश के ।
औरों केभी अधीकार उसने हाथमें लिए ॥६॥

स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि ।
विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना ॥७॥

निष्कासित किए देव स्वर्ग से सब भूमि पै ।
फिरते हैं मनुज ज्यों दुष्ट माहिष दैत्य से ॥७॥

एतद्वः कथितं सम्यगमरारिविचेष्टितम् ।
शरणं वः प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम् ॥८

हमने ये कही सारी कुचेष्टाएं सुरारिकी ।
शरणागत हैं देव उसका बध सोचिए ॥८॥

इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः ।
चकार कोपं शम्भुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननौ ॥९॥

दैवतों के वचन यों सुन शङ्कर विष्णुने ।
किया कोप भ्रुकुटियां मुख पै मोड खागई ॥९॥

ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः ।
निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शङ्करस्य च ॥१०॥

तब क्रोधभरे विष्णु और ब्रह्म महेश के ।
मुखोंसे निकला तेज नभमें स्थिर होगया ॥१०॥

अन्येषाञ्चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः ।
निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत ॥११॥

इन्द्रादि और भी सारे देवतों के शरीर सें ।
महातेज हुवा व्यक्त वह एक हुवा सभी ॥११॥

अतीव तेजसःकूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम् ।
ददृशुस्तेसुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥१२॥

सबके तेजका कूट ज्वलन्त गिरिसा हुवा ।
देखा सुरोंने ज्वालाएँ दिग्विदिग् व्याप्त होगई॥१२

अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् ।
एकस्थ तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा ॥१३॥

सब देव शरीरों का वह तेज अतूप ही ।
एक नारी रूप हुवा त्रिलोको व्याप्तकान्तिका ॥१३

यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम् ।
याम्येन चाभवन्केशा बाहवो विष्णुतेजसा ॥१४॥

शंभु का तेज गौरा जो उसका मुख होगया ।
यमके तेजसे केश भुजाएं विष्णुतेजसे ॥१४॥

सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाभवत् ।
वारुणेन च जंघोरू नितम्बस्तेजसा भुवः ॥१५॥

चन्द्रतेज स्तन हुए मध्य माहेन्द्रतेजसे ।
जंघा ऊर वरुणके नितम्ब क्षितितेजसे ॥१५॥

ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्योर्कतेजसा ।
वसूनाञ्च कराङ्गुल्यः कौबेरेण च नासिका ॥१६

ब्रह्माके तेजसे पैर अंगुली सूर्य तेजसे ।
वसुओं से हस्तशाखा नासा कौबेरतेजसे ॥१६॥

तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा ।
नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा ॥१७॥

उसके दांत प्रगटे थे प्रजापति तेजसे ।
प्रगटे नेत्र थे तीन उसके अग्नि तेजसे ॥१७॥

भ्रुवौ च सन्ध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च ।
अन्येषाञ्चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा ॥१८॥

सन्ध्याओं से भ्रुकुटियां कान वायव्य तेजसे ।
अन्य भी देवताओं से सम्भावित हुई शिवा ॥१८॥

ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम् ।
तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः ॥१९॥

समस्त देवताओं को तेजोराशि-समुद्भवा ।
उसको देख हरखे देव माहिषपीडित ॥१९॥

शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक् ।
चक्रं च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाद्य स्वचक्रतः ॥२०॥

निकाल शूल से शूल उसको शिव ने दिया ।
दिया श्री विष्णुने चक्र उत्पन्नकर चक्र से ॥२०॥

शङ्खं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः ।
मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी ॥२१॥

वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य कुलिशादमराधिपः ।
ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद् गजात् ॥२२

कालदण्डाद्यमो दण्डं पाशं चाम्बुपतिर्ददौ ।
प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम् ॥२३॥

समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन् दिवाकरः ।
कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्याश्चर्म च निर्मलम् २४

क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे ।
चूडामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च ॥२५॥

अर्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान् सर्वबाहुषु ।
नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकमनुत्तमम् ॥२६॥

अङ्गुलीयकरत्नानि समस्तास्वङ्गुलीषु च ।
विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्मलम् ॥२७॥

अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम् ।
अम्लानपङ्कजां मालां शिरस्युरसि चापराम् ॥२८॥

अददज्जलधिस्तस्यै पङ्कजं चातिशोभनम् ।
हिमवान् वाहनं सिंह रत्नानि विविधानि च ॥२९॥

ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः ।
शेषश्च सर्वनागेशो महामणिविभूषितम् ॥३०॥

नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम् ।
अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा ॥३१॥

सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः ।
तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः ॥३२॥

अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत् ।
चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे ॥३३॥

चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः ।
जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम् ॥३४॥

तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्तयः ।
दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः ॥३५॥

संनद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः ।
आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः ॥३६॥

जलेश ने शंख दिया अग्निने शक्ति दी उसे ।
दिया मारुतने चाप भरे तर्कस बाण से ॥२१॥

इन्द्रने वज्रसे वज्र उत्पन्न करके दिया ।
इन्द्रने फिर घण्टादी ऐरावत गजेन्द्र से ॥२२॥

दण्डसे दण्ड यमने दिया पाश जलेशने ।
प्रजेशने अक्षमाला विधाताने कमण्डलु ॥२३॥

समस्त रोमकूपोमें किरणें दो दिनेशने ।
कालने खड्ग उसको और निर्मल ढाल दी ॥२४॥

क्षीराब्धिने हार दिया तथा निर्जर वस्त्र दो ।
दिव्य चूडामणि तथा दिये कङ्कण कुण्डल ॥२५॥

अर्धचन्द्रदिया शुभ्र केयूर सब बाहुमें ।
दो दो पायलें और कण्ठभूषण उत्तम ॥२६॥

सभी अंगुलियों में दी मुद्रिकाएं मनोहरा ।
उसको विश्वकर्मा ने दिया परशु उज्वल ॥२७॥

अनेक अस्त्रशस्त्रादि तथा वर्म अभेद्य भी ।
प्रफुल्लपद्मोंकी माला शिरमें उरमें पृथक् ॥२८॥

समुद्र ने फिरदिया उसे पद्म सुहावना ।
हिमाद्रि ने सिंह दिया तथा रत्न अनेकशः ॥२९॥

सुराभरा पानपात्र धनाधीश्वरने दिया ।
शेषने जो सर्व नागाधीश धारक भूमिका ॥३०॥

महामणिजडा एक नाग हार उसे दिया ।
अन्यभी देवताओं की भूषणायुधभेट से ॥३१॥

सम्मानित हुई अट्टहास से गजने लगी ।
उसके घोर रवसे नभ पूरित होगया ॥३२॥

न माते दीर्घ स्वरसे प्रतिशब्द महा हुवा ।
सभी क्षुब्ध हुए लोक सिन्धुकम्पित हो उठे ॥३३॥

भूमिकांप उठी और महीध्र हिलने लगे ।
तव देव सभी बोले जय हो सिंहवाहिनी ॥३४॥

भक्तिनम्र मुनीन्द्रो ने उसकी स्तुतियां पढी ।
सभी दानव त्रैलोक्य क्षुब्ध होता निहारके ॥३५॥

तैय्यार सब सेनाले सभी उठ खडे हुए ।
आः क्या है क्रोधसे ऐसा कहता महिषासुर ॥३६॥

अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः ।
स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा ॥३७॥

पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम् ।
क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन ताम् ॥३८

दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद्व्याप्य संस्थिताम् ।
ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम् ॥३९॥

शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तै रादीपितदिगन्तरम् ।
महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः ॥४०॥

युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्गबलान्वितः ।
रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः ॥४१॥

अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः ।
पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः ॥४२॥

अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलो युयुधे रणे ।
गजवाजिसहस्रौघैरनेकैः पारिवारितः ॥४३॥

वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत ।
बिडालाख्योऽयुतानां च पञ्चाशद्भिरथायुतैः ॥४४॥

युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः ।
अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृताः ॥४५॥

युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः ।
कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा ॥४६॥

हयानां च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः ।
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ॥४७॥

युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः ।
केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित्पाशांस्तथापरे॥४८॥

देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः ।
सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका ।४९

लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी
अनायस्ताननादेवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः ॥५०॥

मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी ।
सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेशरी ॥५१॥

चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः ।
निःश्वासान् मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका ।५२

त एव सद्यः सम्भूता गणाः शतसहस्रशः ।
युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशैः ॥५३॥

असुरोंसे घिरा दौडा उसही शब्द के प्रति ।
देवीको उसने देखा कान्तिसे लोक पूरतो ॥३७॥

भूमी नमाती पदसे नभ छूती किरोट से ।
पाताल क्षुब्ध करती धनुर्ज्या के निनादसे ॥३८॥

भुजासहस्रसे व्याप्त दिशाएं करती खडी ।
दैत्योंका उस देवीसे युद्ध आरम्भ होगया ॥३९॥

छूटते अस्त्रशस्त्रोंसे जहाँ दीप्त दिगन्त थे ।
सेनापति महिषका दैत्यचिक्षुर नामका ॥४०॥

लडा चामर भी और चौरंगो दलको लिए ।
उदग्र नामका दैत्य सेना साठहजार ले ॥४१॥

लडा करोडसेना ले सेनापति महाहनु ।
असिलोमा दैत्य लडा सेना पांचकरोड ले ॥४२॥

साठ लाख लिए सेना युद्ध वाष्कलने किया ।
गजबाजिसहस्रों के वृन्दसे परिवारित ॥४३॥

करोड रथ के साथ युद्धमें लडता रहा ।
विडाल नामका दैत्यसेनानी वेगसे वहां ॥४४॥

पचास कोटि रथ ले समराङ्गण में वहां ।
रथ हाथो हय घिरे ओर ओर सहस्रही ॥४५॥

वहाँ महा दैत्य लडे देवो के साथ युद्ध में ।
रथों हयों गजों के भी प्रत्येकदल कोटि थे ॥४६॥

ऐसे कोटि सहस्रों से घिराथा महिषासुर ।
तोमरों भिन्दिपालों से मुशलों शक्तिवृन्दसे ॥४७॥

खड्ग पट्टिश पर्शोसे देवीसे लडते रहे ।
फैंकते थे शक्ति केई कई थे पाश फैंकते ॥४८॥

कोई खड्ग प्रहारों से देवीको मारने लगे ।
वर्सती निज शस्त्रास्त्र वहभी चण्डिका वहां ॥४९॥

दैत्यों के शस्त्र अस्त्रों को लोलासे काटने लगो ।
प्रसन्नवदना देवी देवर्षिगणसे स्तुता ॥५०॥

ईश्वरी दैत्यदेहोंपै शस्त्रोंको छोडने लगो ।
जटा हिलाता देवी का सिंह बाहन क्रुद्ध हो ॥५१॥

विचरा दैत्यसेनामें वनमें अग्निदेव ज्यों ।
जूझती उस देवीने छोडे जो श्वास वेगसे ॥५२॥

वेही तत्काल प्रगटे वहाँ गण सहस्रशः ।
पट्टिशों खड्ग दण्डोंसे फर्सोसे रणमें लडे ॥५३॥

नाशयन्तोऽसुरगणान् देवीशक्त्युपबृंहिताः ।
अवादयन्त पटहान् गणाः शङ्खांस्तथापरे ॥५४॥

मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन् युद्धमहोत्सवे ।
ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः ॥५५॥

खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान् ।
पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान् ।५६

असुरान्भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्याकर्षयत् ।
केचिद् द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे ।५७

विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते ।
वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः ॥५८॥

केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि ।
निरन्तराः शरौघेण कृताः केचिद्रणाजिरे ॥५९॥

सेनानुकारिणः प्राणान् मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः ।
केषांचिद् बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ॥६०॥

शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः ।
विच्छिन्नजङ्घास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुराः ॥६१॥

एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद्देव्या द्विधा कृताः ।
छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः ।६२

कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः ।
ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः ॥६३॥

कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः ।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः ॥६४॥

पातितैरथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा ।
अगम्या साभवत्तत्र यत्राभूत्स महारणः ॥६५॥

शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र प्रसुस्रुवुः ।
मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम् ॥६६॥

क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका ।
निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥६७॥

स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेशरः ।
शरीरेभ्योऽमरारीणाममूनिव विचिन्वति ॥६८॥

देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं महासुरैः ।
यथैषां तुष्टुवुर्देवाः पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ॥ॐ॥६९॥

इति श्रीदुर्गासप्तशत्यां द्वितीयोऽध्यायः ।

असुरों को मारते थे देवी की शक्ति से बढे ।
बजाते थे ढोल कई गण शङ्ख बडे बडे ॥५४॥

अन्य केई मृदङ्गों को युद्ध उत्सव में वहां ।
तब देवी शूल गदा शक्ति खड्गादि वृष्टिसे ॥५५॥

सैंकडों दैत्यवर्यों का संहार करने लगी ।
घण्टानिनाद से मुग्ध कई दैत्य गिरा दिये ॥५६॥

अनेक दैत्यों को बांध पाश से खींचती रही ।
केई द्विधा किये खड्ग प्रहारों से तथा कई ॥५७॥

गदानिपात से चूण कई भूपर सोगये ।
कई मुशल से मारे रक्त को बमते रहे ॥५८॥

कई त्रिशूल से दैत्य वक्ष में भिन्न हो पडे ।
केई बाण समूहों से रण में चुन ही दिये ॥५९॥

बाज जैसे कई दैत्य प्राण छोड पडे वहां ।
अनेकों के बाहु कटे केई नाड कटे पडे ॥६०॥

अनेकों के सीस कटे केई मध्य कटे पडे ।
जंघा कटे पडे कोई मही पर महासुर ॥६१॥

एकाक्षि बाहुपद के केई दैत्य द्विधा किये ।
केई शीसकटे दैत्य गिरे भो फिरसे उठे ॥६२॥

लडे कबन्ध देवी से खड्ग हाथ लिए कई ।
बाजोंको ध्वनिके साथ नाचते थे कबन्ध भो ॥६३॥

खड्ग शक्ति लिए हाथ कटे शीस कबन्धभो ।
देवो को दानव कई निष्ठ तिष्ठ उचारते ॥६४॥

पडे रथ गजाश्वों से असुरों से बहां महो ।
अगम्य होगई युद्ध जहां वह महा हुवा ॥६५॥

दैत्य सेना बोच वहां गजाश्वासुर वृन्दके ।
रक्तप्रवाह को सद्य नदियां रणमें बहीं ॥६६॥

दानवों की उस महा सेना को क्षणमात्र में ।
देवोने नष्ट करदी अग्नि ज्यों तृण काष्टको ॥६७॥

और सिंह महानाद करता स्वजटा हिला ।
दानवोंके शरोरोंसे प्राणही वीनता (चुनता) रहा ॥६८॥

देवी गणोंने दैत्योंसे ऐसा युद्ध किया वहां ।
जैसे कुसुमवर्साते हुए सन्तुष्ट देवता ॥६९॥

श्रीहरिशास्त्रिविरचित हिन्दी दुर्गा पाठ में
दूसरा अध्याय पूर्ण हुवा ।

तृतीयोऽध्यायः

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥१॥

निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः ।
सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथाम्बिकाम् ॥२॥

स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः ।
यथा मेरुगिरेः शृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः ॥३॥

तस्यच्छित्त्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान् ।
जघान तुरगान् बाणैर्यन्तारं चैव वाजिनाम् ॥४॥

चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजं चातिसमुच्छ्रितम् ।
विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः ॥५॥

स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्मधरोऽसुरः ॥६॥

सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्धनि ।
आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान् ॥७॥

तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन ।
ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः ॥८॥

चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः ।
जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात् ॥९॥

दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत ।
तेन तच्छतधा नीतं शूलं स च महासुरः ॥१०॥

हते तस्मिन्महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ ।
आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥११॥

सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम् ।
हुंकाराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम् ॥१२॥

भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः ।
चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत् ॥१३॥

ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरे स्थितः ।
बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा ॥१४॥

युद्धयमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ ।
युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः ॥१५॥

ऋषि बोले १

सेना महिष की सारी नष्ट भ्रष्ट निहार के ।
सेनानी चिक्षुर क्रुद्ध देवीको मारने चला ॥२॥

रणमें वह देवीपै बाण यों वर्सने लगा ।
मेघ ज्यों जलधाराएं वर्सता मेरुशृंगपै ॥३॥

लीलासे ही अम्बिकाने उसके बाण काटके ।
मारे तुरग बाणोंसे गिराया और सारथि ॥४॥

तत्काल धनुको काटा गिराया ध्वज उच्च भी ।
सर्वत्र देहमें बींधा शरोंसे चाप हीन को ॥५॥

रथ चाप तथा अश्व और सारथि हीन हो ।
खड्ग चर्म लिए दौडा देवी की ओर दानव ॥६॥

सिंहको शिरपे मार तेजधार कृपाण से ।
देवी के वामभुज में चोट की वेगवान ने ॥७॥

देवीके भुजपै आया खड्ग टूट गया नृप ! ।
तब उसने लिया शूल कोपसे लाल दृष्टि हो ॥८॥

शूलको भद्रकालीपै फैंका प्रबल वेगसे ।
तेजसे दीप्त रविका बिम्ब ज्यों नभमें चला ॥९॥

स्वशूल छोडा देवीने अति दानव शूलपै ।
उससे चूर्ण शतधा हुवा वह कुदैत्य भी ॥१०॥

पराक्रमी महिषके सेनानी के मरे पुनः ।
देवतापी गजारूढ चामरासुर आगया ॥११॥

उसने भी शक्ति छोडी देवीपै, अम्बिका उसे ।
हूंकार से प्रभाहीन कर भूपर डाल दी ॥१२॥

टूटी पडी शक्ति देख क्रुद्ध चामर ने वहां ।
त्रिशूल छोडा, देवीने उसेभी काट ही दिया ॥१३॥

तब ऊंचा उछलके सिंह आ गज कुम्भपै ।
उस चामर से युद्ध बाहुओं से किया वहां ॥१४॥

लडते फिर दोनों हो गजसे भूमि आगये ।
लडे क्रोधभरे घोर प्रहारोंसे परस्पर ॥१५॥

ततो वेगात् खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा ।
करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम् ॥१६॥

उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः ।
दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः ॥१७॥

देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम् ।
बाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम् ।१८

उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम् ।
त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥१९॥

विडालस्यासिना कायात्पातयामास वै शिरः ।
दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥२०॥

एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः ।
माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान् गणान् ॥२१

कांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान् ।
लाङ्गूलताडितांश्चान्याञ्छृङ्गाभ्यां च
विदारितान् ॥२२॥

वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च ।
निःश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले ॥२३॥

निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः ।
सिंहं हन्तुं महादेव्याः कोपं चक्रे ततोऽम्बिका ।२४

सोऽपि कोपान्महावीर्यः खुरक्षुण्णमहीतलः ।
शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च ॥२५॥

वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत ।
लाङ्गूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः ॥२६॥

धुतशृङ्गविभिन्नाश्च खण्डं खण्डं ययुर्घनाः ।
श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः ॥२७॥

इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम् ।
दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत् ॥२८॥

सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम् ।
तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे ॥२९॥

ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः ।
छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत ॥३०॥

तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः ।
तं खड्गचर्मणा सार्धं ततः सोऽभून्महागजः ॥३१॥

वेगसे नभमें कूद उच्छलते मृगेन्द्रने ।
शिर चामर का दूर किया तलप्रहार से ॥१६॥

उदग्र को भवानीने मारा वृक्षशिलादिसे ।
दन्त मुष्टि तलों से ही दिया मार करालको ॥१७॥

गदा से मार देवीने चूर्ण उद्धत का किया ।
भिन्दिपालसे बाष्कल को बाणोंसे ताम्र अंधको १८

महाहनु तथा उग्र वीर्य-उग्रास्य को वहीं ।
त्रिनेत्रा परमेशीने मारडाला त्रिशूलसे ॥१९॥

विडालका शिर गिरादिया काट कृपाण से ।
बाणों से यमके गेह भेजे दुर्धर दुर्मुख ॥२०॥

यों क्षीण होती सेनामें महिषासुर दुष्टने ।
गणोंको त्रासित किया महामहिषरूप से ॥२१॥

तुण्ड प्रहार से केई केई को खुर घातसे ।
सीगोंसे पुच्छघातों से किये व्याकुल शीघ्र ही ॥२२

वेगसे और ओरोंको नादसे भ्रम से तथा ।
निःश्वासों के पवन से गिराए भूमिपै कई ॥२३॥

गिरा यों मुख्य सेनाको दौडा वह महासुर ।
देवी के सिहवध को तब क्रुधा हुई शिवा ॥२४॥

वह भी दैत्य क्रोधी हो खुरोंसे खोदता मही ।
सींगों से ऊर्ध्व नागों को फैंकता गर्जता रहा ॥२५

उसके वेग भ्रमसे रोंदी भूमी विशीर्ण थी ।
पुच्छप्रहार से सिन्धु फैलता सब ओर था ॥२६॥

खण्ड खण्ड हुए मेघ घूमते शृङ्ग युग्मसे ।
श्वासाहत हुए नाना नभमें से गिरे गिरि ॥२७॥

क्रोधसे यों उछलते दैत्यको देख चण्डिका ।
तब कोपाविष्ट हुई उसके बधके लिए ॥२८॥

देवीने फैंकके पाश बांधा समरमें उसे ।
दैत्यने भी बद्ध होते छोडा महिष रूपको ॥२९॥

सद्यः सिंह हुआ यावत् चण्डिका उसका शिर ।
काटती तब तो दीखा खड्गपाणि मनुष्य है ॥३०॥

फिर जल्दी पुरुषको देवीने बिद्ध बाणसे ।
किया, खड्ग ढाललिए; वह मातङ्ग हो गया ॥३१॥

करेण च महासिहं तं चकर्ष जगर्ज च ।
कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत ॥३२॥

ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः ।
तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥३३॥

ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम् ।
पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना ॥३४॥

ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः ।
विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान् ।३५

सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः ।
उवाच त मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् ॥३६॥

देव्युवाच ॥३७॥

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम् ।
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः ॥३८॥

ऋषिरुवाच ॥३९॥

एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽऽरूढा तं महासुरम् ।
पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत् ॥४०॥

ततः सोऽपि पदाऽऽक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः ।
अर्धनिष्क्रान्त एवासीद् देव्या वीर्येण संवृतः ॥४१

अर्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः ।
तया महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः ॥४२

ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत् ।
प्रहर्षं च परं जग्मुः सकला देवतागणाः ॥४३॥

तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः ।
जगुर्गन्धवपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥४४॥

इति श्रीदुर्गासप्तशत्यां तृतीयोऽध्यायः ।

सूंडसे सिंहको खूब खींचता गर्जता रहा ।
खींचते सूंडको देवी खड्गसे काटही गई ॥३२॥

फिरसे उसने देह धार मानुष का लिया ।
पूर्ववत् क्षोभित किया चराचर त्रिलोक को ॥३३॥

तब क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका दिव्य पान को ।
पीती हुई बारबार हँसी अरुणलोचना ॥३४॥

गरजा वहभी दैत्य बलवीर्यमदोद्धत ।
देवीके प्रति सींगों से फेंकता बहु था गिरि ॥३५॥

वह देवी स्वबाणों से गिरियों को विचूरती ।
बोली उसे, मदोद्धत व्याकुलाक्षर वाक्य यों ॥३६॥

देवी बोली ॥३७॥

गर्ज गर्ज अरे मूढ पिऊं मैं जबतक मधु ।
तेरे मरमिटे पीछे गर्जेंगे देवता यहीं ॥३८॥

ऋषि बोले ॥३९॥

यों बोलती उछलके जा चढी उस दैत्य पै ।
दबाके पदसे, कण्ठ छेद डाला त्रिशूल से ॥४०॥

वहभी हो पदाक्रान्त अपने मुख से बहिः ।
आधा निकलता देवी-तेजसे रुद्ध होगया ॥४१॥

आधा प्रकट भी दैत्य देवीसे लडता रहा ।
खड्ग से उस देवीने शिर काट गिरा दिया ॥४२॥

तब हाहा उचरती दैत्यसेना सभी भगी ।
प्रमोद को प्राप्त हुए सबही देवतागण ॥४३॥

देवों ने स्तुतियां गाईं महर्षिगण संग आ ।
गन्धर्वोंने गान, नृत्य, अप्सरागण ने किया ।४४॥

श्रीहरिशास्त्रिकृत हिन्दी दुर्गापाठ में तीसरा अध्याय पूर्ण

अथ चतुर्थोऽध्यायः

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥१॥

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये
तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या ।
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा
वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहाः ॥२॥

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥३॥

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च ।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥४॥

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां, कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥५॥

किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि ।
किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि
सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥६॥

हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै-
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा ।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥७॥

यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवी ।
स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु-
रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥८॥

ऋषि बोले ॥१॥

शक्रादिदेव, उस दुर्जन दैत्य और,
सैन्यादिको हत किया जब चण्डिकाने ।
गाने लगे विनतमस्तक हो गिरा से
हर्ष प्रफुल्ल तनुसे स्तुति अम्बिका की ॥२॥

जो व्याप्त विश्वभरमें निजशक्ति से है,
जो है समस्त सुरशक्तिसमूह रूपा ।
देवर्षि पूजित हुई उस अम्बिका को
हैं भक्तिसे नत, हमें वह श्रेय देवें ॥३॥

पूर्ण प्रभाव जिसका भगवान् अनन्त
ब्रह्मा महेश न बखान सके न शक्ति,
चण्डी वही सब जगत्परिपालनामें
अश्रेय और भय नाशनमें धरें धीः ॥४॥

जो श्रीः सुकर्मिजनके घरमें अलक्ष्मी
पापिष्ठ के, सुमति के उर बीच बुद्धि ।
श्रद्धा सुजात जनकी कुल जात को ही
देवि ! प्रणाम तुमको, तुम विश्वपालो ॥५॥

क्या रूप वर्णन करें यह है अचिन्त्य
क्या वीर्य दैत्य लयकारि प्रभूत गावें ।
संग्राम में चरित अद्भुत क्या बखानें
मातः सभी असुरदेवगणादिकों में ॥६॥

तू हेतु सर्वजनकी त्रिगुणाऽपि दोष-
द्वारा न जान पडती हर विष्णु को भी ।
आधार तू सकल का जग अंश तेरा
आद्या परा प्रकृति तू अविकार ही है ॥७॥

उच्चार से सुर सभी जिसके मखों में
पाते सुतृप्ति जननी वह तू स्वयं है ।
स्वाहा सुनिश्चित हुई पितृतृप्ति हेतु-
रुच्चार्य से त्वमत एव जनैः स्वधा च ॥८॥

या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यामहाव्रता त्व-
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः ।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि ॥९॥

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्युजुषां निधान-
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम् ।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्त्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री ॥१०॥

मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा ।
श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
गौरि त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥११॥

ईषत्सहाससमलं परिपूर्णचन्द्र-
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम् ।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण ॥१२॥

दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल-
मुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः ।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन ॥१३॥

देवि प्रसीद परमा भवतो भवाय
सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि ।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत-
न्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥१४॥

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः ।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना ॥१४॥

धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्मा-
ण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति ।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा-
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन ॥१६॥

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।

जो मुक्ति हेतु अविचिन्त्य महाव्रता है
संसेव्य है नियत इन्द्रिय योगियों के ।
मोक्षार्थी और गतदोष मुनीश्वरों से
विद्या तुम्ही भगवती परमा वही हो ॥९॥

तू शब्द है विमल ऋग् यजु का विधान
ओङ्कार रम्य पद संयुत सामका भी ।
तू ही त्रयी भगवती भवभावनार्थ
वार्ता समस्त जगकी परमार्ति-हन्त्री ॥१०॥

मेधा महेशि जिससे सब शास्त्र जानें
दुर्गा असङ्ग भवसागर नाव है तू ।
श्री विष्णु के हृदयपद्मनिवासिनी हो
गौरी तुही गिरिश वक्षविलासिनी हो ॥११॥

जो मन्दहासयुत निर्मल पूर्णचन्द्र-
जैसा सुवर्ण सम कान्तिभरा मनोज्ञ ।
है आपका मुख, उसे सहसा निहार
की चोट है महिष ने, यह चित्र ही है ॥१२॥

मातः ! अनूप मुख को विकराल भौंह-
बाला, शशाङ्क सम सुन्दर भी निहार ।
तत्काल प्राण महिषासुरने न छोडे
आश्चार्य, कौन कुपितान्तक देख जीवे ॥१३॥

देवि ! प्रसन्न मन हो जगके हितार्थ
तत्काल नष्ट करती कुपिता कुलोंको ।
जाना अभी यह, विनष्ट किया समस्त
सद्य-प्रभूत बलभी महिषासुरीय ॥१४॥

सम्मान्य वे जगतमें धन है उन्हीके
वे कीर्तिमान उनके हर धर्म वर्ग,
हैं धन्य वे नियत आत्मजदार वाले
हैं आप अभ्युदयदा जिनपै प्रसन्न ॥१५॥

हे देवि ! लोक सुकृती सब धर्म कर्म
अत्यन्त आदरभरा करता सदा ही ।
स्वर्ग प्रदान करती तुम हो कृपा से
त्रैलोक्य में सुफलदा तुम हो भवानि ! ॥१६॥

दुर्गे तुम्ही स्मरणसे सबकी हरो भी
देती स्थिर स्मरणसे मति शोभना हो ।

दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता ॥१७॥

दारिद्र्य दुःख भयहारिणि कौन ओर
सर्वोपकारकरणी करुणा रसार्द्रा ॥१७॥

एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम् ।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि ॥१८॥

पावे जगत् सुख सदा वध से इन्हो के
वैसे करै नरक हेतुक पाप चाहे ।
पा युद्ध मोत सब ये सुरलोक जावें
यों जान आप ध्रुव दानव मारती हो ॥१८॥

दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम् ।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी ॥१९॥

क्यों दैत्य भस्म करती नहि देखते ही
क्यों बैरिवृन्द पर शस्त्र प्रचारती हो ।
हो शस्त्र पूत रिपुभी सुरलोक जावें
ऐसी प्रशस्त उनमें मति आपकी है ॥१९॥

खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः
शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् ।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड-
योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥२०॥

खड्ग प्रभा पटलकी द्युति और उग्र-
शूलाग्रकी चमक से दृग शत्रुओं की ।
फूटो नहीं, किरणवान् शशिखण्ड युक्त-
वे आपका मुख मनोहर देखते थे ॥२०॥

दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं
रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः ।
वीर्यं च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥२१॥

है आपका सहज दुष्कृत नाशकारी
वैसे स्वरूप अविचिन्त्य अतुल्य भी है ।
वीर्य प्रणाशक सभी त्रिदशारियों का
यों आपने यह दया रिपुसंघपै की ॥२१॥

केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र ।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि ॥२२॥

सादृश्य देवि किससे तव वीर्य का हो
है रूप शत्रुभयकारि मनोज्ञ कैसा ।
संग्राम में निठुरता मनमें कृपा भी
देखी त्रिलोक भरमें वरदे तुम्ही में ॥२२॥

त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन
त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा ।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त-
मस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते ॥२३॥

त्रैलोक्य रक्षण किया रिपुनाश से है
संग्राम से निहतदानव वृन्द को की ।
भेजा द्युलोक, भय दूर किया हमारा
उन्मत्त दैत्य भय, देवि ! तुम्हे नमो है ॥२३॥

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके ।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च ॥२४॥

शूल से पाल हमको खड्ग से पाल अम्बिके !
घण्टानिनाद से पाल चापज्याघोष से तथा ॥२४॥

प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे ।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि ॥२५॥

पूर्वपश्चिमसे पाल चण्डि दक्षिण में तथा ।
निजशूलघुमाने से रक्ष उत्तरमें शिवे ॥२५॥

सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते ।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ।२६

त्रैलोक्य में विचरते सौम्यघोर स्वरूप हैं ।
बचाओ उनसे देवि हमको इस भूमिको ॥२६॥

खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके ।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः ॥२७॥

ऋषिरुवाच ॥२८॥

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः ।
अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः ॥२९॥
भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु धूपिता ।
प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान् ।३०।

देव्युवाच ॥३१॥

ब्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम् ।३२।

देवा ऊचुः ॥३३॥

भगवत्या कृतं सर्वं न किंचिदवशिष्यते ॥३४॥
यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः ।
यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि ॥३५॥
संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः ।
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने ॥३६॥
तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम् ।
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके ॥३७॥

ऋषिरुवाच ॥३८॥

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः ।
तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप ॥३९॥
इत्येतत्कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा ।
देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी ॥४०॥
पुनश्च गौरीदेहात्सा समुद्भूता यथाभवत् ।
वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः ॥४१॥
रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी ।
तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत्कथयामि ते ।ह्रींॐ।४२

श्रीदुर्गासप्तशत्यां चतुर्थोऽध्यायः पूर्णः ।
मध्यमचरित्रं पूर्णम् ।

खड्ग शूल गदा आदि शस्त्र जो आपके शिवे !
करों में हैं लिये आप उनसे रक्ष सर्वतः ॥२७॥

ऋषि बोले ॥२८॥

यों हुई स्तुत देवों से देवी नन्दन पुष्प से ।
पूजी, वह जगद्धात्री दिव्यगन्धानुलेप से ॥२९॥
भक्तिपूर्वक देवोंसे धूपों से धूपिता हुई ।
बोली प्रसादसुमुखी नमते सुरसंघको ॥३०॥

देवी बोली ॥३१॥

वरमांगो सभी देवो हमसे जो अभीष्ट है ॥३३॥

देव बोले ॥३३॥

सभी किया भगवति ! कुछ बाकी रहा नहीं ॥३४॥
मारा जो आपने शत्रु हमारा महिषासुर ।
यदि देना वर तुम्हे हमको है महेश्वरि ॥३५॥
तो सुमरी हुई आप हमारी विपदा हरो ।
नर जो इन स्तोत्रों को पढ़ें हे विमलानने ॥३६॥
उसके धनदारादि सम्पदा वृद्धि के लिए ।
प्रसन्न आप हमपै होइये सर्वदे शिवे ! ॥३७॥

ऋषि बोले ॥३८॥

ऐसे तुष्ट सुरों ने की जगत् और स्वकेलिए ।
'तथास्तु' कहके देवी अन्तर्हित हुई नृप ! ॥३९॥
ऐसा कहा भूप मैने जैसे व्यक्त हुई वह शिवा ।
देवी देवशरीरों से लोकत्रयहितैषिणी ॥४०॥
फिर गौरी देहमेंसे हुई व्यक्त यथा वह ।
मारने दुष्ट दैत्यों को और शुंभनिशुंभ को ।४१॥
लोकों का त्राण करने देवों की उपकारिणी
सुन मेरा कहा भूप ज्योंकात्यों तुझको कहूँ ॥४२॥

श्रीहरिशास्त्रिविरचित हिन्दी दुर्गासप्तशती
में चौथा अध्याय पूर्ण हुआ ।
मध्यमचरित्र पूर्ण हुआ ।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

उत्तमचरित्रप्रारंभः ।

अस्य श्रीउत्तमचरित्रस्य रुद्रऋषिः, अनुष्टुप्-छन्दः, महासरस्वती देवता, क्लीं बीजं, (भ्रामरी बीजं), भीमा शक्तिः, सूर्यस्तत्त्वं सामवेदस्वरूपं महासरस्वतीप्रीत्यर्थे पाठे विनियोगः

उत्तम चरित्र प्रारंभ

इस चरित्र का रुद्र ऋषि है, अनुष्टुप् छन्द है महा सरस्वती देवता है क्लीं बीज है (भ्रामरी बीज) है। भीमा शक्ति है, सूर्य तत्त्व है, सामवेद स्वरूप है, महा सरस्वती प्रीत्यर्थ विनियोग है।

❀ ध्यानम् ❀

घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकान्
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम् ।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम् ।१

ध्यान रहस्य में इस प्रकार है—

गौरी तनू से निकली शुद्धसत्त्वगुणा शिवा ।
शुंभ दैत्य प्राण हरी रम्य आठ भुजावती ।।१।।
बाँए करो बीच शंख घन्टा हल धनू धरै ।
दाँए में बाण मुसल शूल चक्र लिए हुए ।।२।।
पूजी गई स्तुत हुई देती सर्वज्ञता सदा ।
महा विद्या महामाया महागौरो महेश्वरी ।।३।।
पूर्णचन्द्रसमाकान्ति दुग्धपाण्डरवर्ण की ।
अज्ञान नाशिनी ज्ञान प्रभाएँ वर्षतो हुई ।।४।।
शुक्ल वस्त्र धरे शुक्ल पुष्प चन्दन धारिणी ।
मोतियों के दिव्य हार उरपै पहने हुई ।।५।।
शुक्ल रत्न जड़े नाना भूषणों से सजी हुई ।
मन्दहास प्रभा पूर्ण करुणा रस वर्षतो ।।६।।
देवर्षि और ब्रह्मर्षि गण से नित्य पूजिता ।
ध्यान प्राप्त हुई सद्यः शोक मोह विनाशनो ।।७।।
शरणागत भक्तों की कामना सिद्धि कारिणी ।
महा सरस्वती देवी माता का ध्यान मैं करूं ।।८।।

ऋषिरुवाच ।।१।।

पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः ।
त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात् ।।२।।
तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम् ।
कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च ।।३।।
तावेव पवनर्द्धि च चक्रतुर्वह्निकर्म च ।
ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः ।।४।।
हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः ।
महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम् ।।५।।

ऋषि बोले ।।१।।

पहिले शुंभनिशुंभाख्य असुरो ने महेन्द्र से ।
त्रैलोक्य–यज्ञभागों को मद से बल से लिया ।।२।।
सूर्याधिकार भी वेही, वेही चन्द्राधिकार भी ।
कुबेर और यम का करते थे जलेश का ।।३।।
वे ही पवन का और करते अग्नि कर्म भी ।
सब देव भगे दूर राज्य खो हार हार के ।।४।।
अधिकार छीने देव, दानवों से निरस्त हो ।
उस देवी जयन्ती को सभी सुमरने लगे ।।५।।

तयास्मामाकं वरो दत्तो यथाऽऽपत्सु स्मृताखिलाः ।
भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः ॥६॥
इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम् ।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः ॥७॥

हमें उसने बर दिया, दुःख में सुमरी हुई ।
तत्काल ही मिटा दूंगी तुम्हारे सब कष्ट मैं ॥६॥
यों बुद्धि कर वे देव हिमाद्रि पर जा चढे ।
वहाँ जा विष्णुमाया की स्तुतियों करने लगे ॥७॥

देवा ऊचुः ॥८॥

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥९॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः ।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः ॥१०॥

कल्याण्यै प्रणतां वृद्धयै सिद्धयै कुर्मो नमो नमः ।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः ॥११॥

दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै ।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः ॥१२॥

अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः ।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः ॥१३॥
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता ।
नमस्तस्यै ॥१४॥ नमस्तस्यै ॥१५॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥१६॥

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते ।
नमस्तस्यै ॥१७॥ नमस्तस्यै ॥१८॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥१९॥

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥२०॥ नमस्तस्यै ॥२१॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥२२॥

या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥२३॥ नमस्तस्यै ॥२४॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥२५॥

या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥२६॥ नमस्तस्यै ॥२७॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥२८॥

देव बोले ॥८॥

नमो देवि महा देवि शिवा को है सदा नमः
नमः प्रकृति भद्रा को करें नियत हो नमः ॥९॥
रौद्रा को नति नित्या को गौरि धात्रि तुम्हें नमः ।
ज्योत्स्नाको चन्द्ररूपा को सुखा को है
सदा नमः ॥१०॥

कल्याणी को प्रणति है नमो हे वृद्धि सिद्धि को ।
निर्ऋति क्षितिभृल्लक्ष्मी शर्वाणी को
नमो नमः ॥११॥

दुर्गा को दुर्गपारा को सारा को सर्वकारिणी ।
ख्याति को और कृष्णा को धूम्रा को है
सदा नमः ॥१२॥

अति सौम्या महारौद्रा उसे नति नमो नमः ।
नमो जगत्प्रतिष्ठा को देवी कृति तुम्हे नमः ॥१३॥
जो देवी सब भूतों मे विष्णुमाया कही गई ।
नमस्तस्यै ॥१४॥ नमस्तस्यै ॥१५॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥१६॥

जो देवी सब भूतों में चेतना है कही गई ।
नमस्तस्यै ॥१७॥ नमस्तस्यै ॥१८॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥१९॥

जो देवी सब भूतों में बुद्धिरूप विराजती ।
नमस्तस्यै ॥२०॥ नमस्तस्यै ॥२१॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥२२॥

जो देवी सब भूतों में निद्रारूप विराजती ।
नमस्तस्यै ॥२३॥ नमस्तस्यै ॥२४॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥२५॥

जो देवी सब भूतों में क्षुधा रूप विराजती ।
नमस्तस्यै ॥२६॥ नमस्तस्यै ॥२७॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥२८॥

या देवी सर्वभूतेषुच्छायारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥२९॥ नमस्तस्यै ॥३०॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥३१॥

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥३२॥ नमस्तस्यै ॥३३॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥३४॥

या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥३५॥ नमस्तस्यै ॥३६॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥३७॥

या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥३८॥ नमस्तस्यै ॥३९॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥४०॥

या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥४१॥ नमस्तस्यै ॥४२॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥४३॥

या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥४४॥ नमस्तस्यै ॥४५॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥४६॥

या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥४७॥ नमस्तस्यै ॥४८॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥४९॥

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥५०॥ नमस्तस्यै ॥५१॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥५२॥

या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥५३॥ नमस्तस्यै ॥५४॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥५५॥

या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥५६॥ नमस्तस्यै ॥५७॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥५८॥

या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥५९॥ नमस्तस्यै ॥६०॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥६१॥

जो देवी सब भूतों में छाया रूप विराजती ।
नमस्तस्यै ॥२९॥ नमस्तस्यै ॥३०॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥३१॥

जो देवी सब भूतों में शक्ति रूप विराजती ।
नमस्तस्यै ॥३२॥ नमस्तस्यै ॥३३॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥३४॥

जो देवी सब भूतों में तृष्णा रूप विराजती ।
नमस्तस्यै ॥३५॥ नमस्तस्यै ॥३६॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥३७॥

जो देवी सब भूतों में क्षान्ति रूप विराजती ।
नमस्तस्यै ॥३८॥ नमस्तस्यै ॥३९॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥४०॥

जो देवी सब भूतों में जाति रूप विराजती ।
नमस्तस्यै ॥४१॥ नमस्तस्यै ॥४२॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥४३॥

जो देवी सब भूतों में लज्जा रूप विराजती ।
नमस्तस्यै ॥४४॥ नमस्तस्यै ॥४५॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥४६॥

जो देवी सब भूतों में शान्ति रूप विराजती ।
नमस्तस्यै ॥४७॥ नमस्तस्यै ॥४८॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥४९॥

जो देवी सब भूतों में श्रद्धा रूप विराजती ।
नमस्तस्यै ॥५०॥ नमस्तस्यै ॥५१॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥५२॥

जो देवी सब भूतों में कान्ति रूप विराजती ।
नमस्तस्यै ॥५३॥ नमस्तस्यै ॥५४॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥५५॥

जो देवी सब भूतों में लक्ष्मी रूप विराजती ।
नमस्तस्यै ॥५६॥ नमस्तस्यै ॥५७॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥५८॥

जो देवी सब भूतों में वृत्ति रूप विराजती ।
नमस्तस्यै ॥५९॥ नमस्तस्यै ॥६०॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥६१॥

या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥६२॥ नमस्तस्यै ॥६३॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥६४॥

जो देवी सब भूतों में स्मृति रूप विराजती ।
नमस्तस्यै ॥६२॥ नमस्तस्यै ॥६३॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥६४॥

या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥६५॥ नमस्तस्यै ॥६६॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥६७॥

जो देवी सब भूतों में दया रूप विराजती ।
नमस्तस्यै ॥६५॥ नमस्तस्यै ॥६६॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥६७॥

या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥६८॥ नमस्तस्यै ॥६९॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥७०॥

जो देवी सब भूतों में तुष्टि रूप विराजती ।
नमस्तस्यै ॥६८॥ नमस्तस्यै ॥६९॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥७०॥

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥७१॥ नमस्तस्यै ॥७२॥ नमस्तस्यै
नमो नमोः ॥७३॥

जो देवी सब भूतों में मातृ रूप विराजती ।
नमस्तस्यै ॥७१॥ नमस्तस्यै ॥७२॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥७३॥

या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै ॥७४॥ नमस्तस्यै ॥७५॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥७६॥

जो देवी सब भूतों में भ्रान्ति रूप विराजती ।
नमस्तस्यै ॥७४॥ नमस्तस्यै ॥७५॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥७६॥

इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या ।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः ॥७७॥

इन्द्रियों और भूतों की अधिष्ठात्री जिसे कहें ।
जो भूतों में सदा व्याप्त उसको है नमो नमः ॥७७॥

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत् ।
नमस्तस्यै ॥७८॥ नमस्तस्यै ॥७९॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥८०॥

समूचे जग में व्याप्त हुई जो चिति रूप है ।
नमस्तस्यै ॥७८॥ नमस्तस्यै ॥७९॥ नमस्तस्यै
नमो नमः ॥८०॥

स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया-
त्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता ।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥८१॥

स्तुता हुई पूर्व अभीष्ट लाभ से
सुरेन्द्र से सेवित जो दिनों हुई ।
वही हमारे शुभ हेतु ईश्वरी
करे सदा क्षेम विपत्तियां हरे ॥८१॥

या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै-
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते ।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥८२॥

जो ईश्वरी उद्धत दैत्य से तपे
नमस्कृता है हम देवसंघ से ।
जो याद की तत्क्षण आपदा हरे
सभक्ति नम्राङ्ग हुए जनौघ से ॥८२॥

ऋषिरुवाच ॥८३॥

ऋषि बोले ॥८३॥

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती ।
स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ॥८४॥

यों स्तोत्रमें युक्त हुए देवों में पार्वती वहां ।
न्हाने आई जाह्नवी के जल में नृपनन्दन ॥८४॥

साब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का ।
शरीरकोषतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा ॥८५॥

पूछा सुरों को उसने किसकी करते स्तुति ।
बोली शिवा व्यक्त हुई इसके तनुकोश से ॥८५॥

स्तोत्रं ममैतत् क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः ।
देवैः समेतैः समरे निशुम्भेन पराजितैः ॥८६॥

शरीरकोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका ।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते ॥८७॥

तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती ।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया ॥८८॥

ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम् ।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः ॥८९॥

ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा ।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम् ।९०।

नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम् ।
ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर ॥९१॥

स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा ।
सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान् द्रष्टुमर्हति ॥९२॥

यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो ।
त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रत भान्ति ते गृहे ॥९३॥

ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात् ।
पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हयः ॥९४॥

विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे ।
रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम् ॥९५॥

निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात् ।
किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम् ।९६

छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति ।
तथायं स्यन्दनवरो यः पुराऽऽसीत्प्रजापतेः ॥९७॥

मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता ।
पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे ॥९८॥

निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः ।
वह्निरपि ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी ॥९९॥

एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते ।
स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते ।१००।

स्त्रोत्र मेरा कर रहे शुम्भ से हो निरस्त ये ।
समस्त देव रण में पराजित निशुम्भ से ॥८६॥

प्रगटी अम्बिका जो थी गौरी के तनुकोश से ।
कोशिकी कहलाती है तब से वह लोक में ॥८७॥

इसे निकलते ही तो पार्वती श्याम होगई ।
प्रख्यात कालिका देवी रही वह हिमाद्रि पै ।८८।

तब देखा धरे रूप अम्बिका को मनोहर ।
चण्ड और मुण्डने, जो थे दास शुम्भ निशुम्भके ८९

वे दोनों शुम्भ को बोले अतीव सुमनोहरा ।
कोई स्त्री है महाराज चमकाती हिमाद्रि को ।९०।

वैसा रूप किसी ने भी न देखा है, कहीं न है ।
जानिये कौन है देवी लाइये दानवेश्वर ॥९१॥

कान्ति से दिक्प्रकाशी है स्त्री रत्न वह सुन्दरी ।
वहीं है वह दैत्येन्द्र आप जा देखिए उसे ॥९२॥

जितने रत्नमणि है गज अश्वादि हे प्रभो ! ।
त्रैलोक्य के सभी तो है घर में अब आपके ।९३।

ऐरावत प्राप्त किया गजरत्न महेन्द्र से ।
यह कल्पद्र म तथा अश्व उच्चैःश्रवा लिया ॥९४॥

विमान हंस संयुक्त आपके चौक में रखा ।
आश्चर्यकारी ब्रह्मा का जो है वह सदा यहीं ।९५।

कुबेर से जीत लाए निधिपद्म महान् भी ।
अब्धि ने दी केसरिणी माला फुल्ल सरोजिनी ।९६।

स्वर्ण प्रभा बरसता यह छत्र जलेशका ।
रथ है रत्न यह जो रखता था प्रजापति ॥९७॥

काल को मृत्युदा शक्ति आपके पास है प्रभो ! ।
जलेश का पास उग्र भाई के हाथ में रहा ॥९८॥

निशुम्भ के पास सिन्धु-जात सम्पूर्ण रत्न हैं ।
अग्नि ने भी तुम्हें वह्निशोध दो वस्त्र है दिये ।९९।

ऐसे दैत्येन्द्र सारे ही रत्न हैं पास आपके ।
स्त्री रत्न यह कल्याणी आप क्यों ले रहे नहीं ।१००

ऋषिरुवाच ॥१०१॥

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः ।
प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम् ॥१०२॥

इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम ।
यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु १०३

स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने ।
सा देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा ।१०४

ऋषि बोले ॥१०१॥

सुन यों चण्डमुण्डों की बात दैत्येन्द्र शुम्भ ने ।
सुग्रीव को दूत बना भेजा देवी-समीप में ॥१०२॥

ऐसे ऐसे कहो जाओ मेरे वचन से उसे ।
जैसे प्रसन्न हो आवे यत्न जल्दी करो वहो ।१०३

वहां जा वह सुग्रीव जहां सुन्दर शैल पै ।
देवी थी उसको बोला सोधे मधुर वाक्य यों ।१०३।

दूत उवाच ॥१०५॥

देवी दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः ।
दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः ॥१०६॥

अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु ।
निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत् ।१०७

मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः ।
यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक् ॥१०८॥

त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः ।
तथैव गजरत्नं च हृत्वा देवेन्द्रवाहनम् ॥१०९॥

क्षीरदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः ।
उच्चैःश्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम् ॥११०॥

यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च ।
रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने ॥१११॥

स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम् ।
सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम् ॥११२॥

मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम् ।
भज त्वं चञ्चलापाङ्गे रत्नभूतासि वै यतः ।११३।

परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात् ।
एतद् बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज ॥११४॥

त्रैलोक्य बोला ॥१०५॥

देवि दैत्येन्द्र है शुम्भ त्रिलोकी का महेश्वर ।
दूत मैं उसका भेजा आया तेरे समीप हूँ ॥१०६॥

आज्ञा है मान्य जिसकी सब ही देवयोनि में ।
उस देव विजेताने जो कहा है सुनों वही ॥१०७॥

सभी त्रिलोक्य मेरा है देव मेरे अधीन हैं ।
भोगता हूं यज्ञ भाग मैं ही सारे जुदा जुदा ।१०८।

त्रैलोक्य में सभी श्रेष्ठ रत्न मेरे अधीन हैं ।
ऐरावत मुझे सौंपा गजरत्न महेन्द्र ने ॥१०९॥

सिन्धु मन्थनसंभूत अश्वरत्न मुझे यहां ।
उच्चैःश्रवा सुरों ने आ सौंपा साथ प्रणाम के ।१०१

देवों, गन्धर्व नागों के अन्य जो कुछ वस्तुएँ ।
रत्नरूप रहीं सारी हैं मेरे पास सुन्दरि ॥१११॥

मानते है हम तुम्हें देवि ! स्त्री रत्न लोक में ।
हमारे पास आ क्योंकि रत्नभोक्ता हमी रहे ।११२॥

मुझे या मम भ्राता को निशुम्भ बलपूर्ण जो ।
वरले चंचलापाङ्गि क्योंकि तू रत्न रूप है ।११३।

मेरा परिग्रह हुई तू महैश्वर्य्य पायगी ।
इसको बुद्धि से सोच बन मेरा परिग्रह ॥११४॥

ऋषिरुवाच ॥११५॥

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तःस्मिता जगौ ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत् ॥११६॥

ऋषि बोले ॥११५॥

यों कहा तब गंभीर अन्तःस्मित हुई शिवा ।
दुर्गा भगवती भद्रा बोली जो धारती जगत् ॥११६॥

देव्युवाच ॥११७॥

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किंचित्त्वयोदितम् ।
त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः ११८

देवी बोली ॥११७॥

तूने सत्य कहा, मिथ्या इसमें कुछ भी नहीं ।
त्रैलोक्याधिप है शुंभ वैसा ही है निशुंभ भी ।११८

किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम् ।
श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञा या कृता पुरा ॥११६॥
यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति ।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति ।१२०।
तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः ।
मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु ।१२१

दूत उवाच ॥१२२॥

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः ।
त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः ।१२३
अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि ।
तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका ।१२४
इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे ।
शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम् १२५
सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ।
केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि ॥१२६॥

देव्युवाच ॥१२७॥

एवमेतद् बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्यवान् ।
किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा ॥१२८॥
स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः ।
तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु तत् ।ॐ१२९

इति दुर्गासप्तशत्यां पञ्चमोऽध्यायः ।

किन्तु जो की प्रतिज्ञा है मिथ्या कैसे करूँ उसे ।
सुन मेरी प्रतिज्ञा जो मैंने की अल्प बुद्धि से ।११६॥
जो मुझे रण में जीते मेरा दर्प निकाल दे ।
मेरे समबलो होवे वह मेरा बनै पति ॥१२०॥
तो यहाँ शुम्भ आवे, या निशुम्भ असुरेश्वर ।
मुझे जीतें देर नहीं करै शीघ्र विवाह भी ।१२१॥

दूत बोला ॥१२२॥

हे गर्विष्ठे नहीं ऐसा मेरे सम्मुख बोल तू ।
त्रैलोक्य में कौन आवे आगे शुम्भ निशुम्भ के ।१२३
और भी वर दैत्यों के सभी अमर युद्ध में ।
नहीं ठहरते तू तो स्त्री है केवल एक ही ॥१२४॥
इन्द्रादि देव जिनके रण में ठहरे नहीं ।
उन शुम्भादि के कैसे नारी सम्मुख जायगी ।१२५॥
मेरे ही कहने से जा पास शुम्भ निशुम्भ के ।
केशग्रहण से मानहीन हो मत जा वहाँ ॥१२६॥

देवि बोली ॥१२७॥

ऐसा ही बलवान् शुम्भ और दैत्य निशुम्भ है ।
प्रतिज्ञा को वया करूं मैंने विचारी पहले न थी ।१२८
अब तू जा कहा मेरा यह आदरसे वहाँ ।
कहदे दैत्यपति को वह जो युक्त हो करै ॥१२९॥

श्रीहरिशास्त्रिविरचित हिन्दी दुर्गा पाठ में
पाँचवा अध्याय पूर्ण हुआ ।

अथ षष्ठोऽध्यायः

ऋषिरुवाच ॥१॥

इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः ।
समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात् ॥२॥

तस्य दूतस्य तद्वाक्यमकर्ण्यासुरराट् ततः ।
सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम् ॥३॥

हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः ।
तामानय बलाद् दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम् ॥४॥

तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः
स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा ॥५॥

ऋषिरुवाच ॥६॥

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः ।
वृतः षष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ ॥७॥

स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम् ।
जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः ॥८॥

न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्तारमुपैष्यति ।
ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम् ॥९॥

देव्युवाच ॥१०॥

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः ।
बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम् ॥११॥

ऋषिरुवाच ॥१२॥

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरी धूम्रलोचनः ।
हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः ॥१३

अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका ।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः ॥१४॥

ततो धुतसटः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम् ।
पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः ॥१५॥

कांश्चित् करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान् ।
आक्रम्य चाधरेणान्यान् स जघान महासुरान् ॥१६

केषांचित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी ।
तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक् ॥१७॥

ऋषि बोले ॥१॥

सुन यों बात देवी की वह दूत सकोप हो ।
आया विस्तार से बोला सब वृत्तान्त शुम्भ को ॥२

दूत की बात सुनके दैत्यराज सकोप हो ।
सेनाधिपाल अपने धूम्रलोचन को कहा ॥३॥

धूम्रलोचन तू शीघ्र निज सेना समेत जा ।
बल से उस दुष्टा को चोटी पकड ला यहां ॥४॥

उसका पक्ष ले कोई खडा हो यदि शत्रु तो ।
मार दे उसको चाहे देव, गन्धर्व, यक्ष हो ॥५॥

ऋषि बोले ॥६॥

आज्ञा यों पा शीघ्र वह धूम्र लोचन दानव ।
गया जल्दी वहां दैत्य सेना साठ हजार ले ॥७॥

उसने देख देवी को बैठी जो हिम शैलपै ।
जोर से जा कहा पास चल शुंभनिशुंभ के ॥८॥

जो राजी से आज मेरे प्रभु पास न जायगी ।
तो ले चलूंगा बल से तुझे चिकुर खींच के ॥९॥

देवी बोली ॥१०॥

दैत्येश ने तुझे भेजा बली तू सैन्य युक्त है ।
बल से ले चलैगा तो तेरा क्या कर मैं सकूं ॥११॥

ऋषि बोले ॥१२॥

यों कहा दौडता आया देवी पै धूम्रलोचन ।
हूंकार से ही अम्बा ने उसे भस्म बना दिया ॥१३

तब क्रुद्ध हुवा सैन्य देवी पै बरसने लगा ।
तीखे बाण तथा शक्ति फरसों को निरन्तर ॥१४॥

जटा हिलाता तब तो क्रुद्ध हो गर्जता हुवा ।
देवी का सिंह वह जा दैत्यों की सैन्य पै पडा ॥१५

कर प्रहार से केई मुख से डाढ़ से कई ।
दबा दबा अधर से कई मारे महासुर ॥१६॥

अनेकों के फाड दिये नखों से पेट सिंह ने ।
किये तल प्रहारों से शिरों को धड से पृथक् ॥१७॥

विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे ।
पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः ॥१८॥

क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना ।
तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना ॥१९॥

श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम् ।
बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवी केसरिणा ततः ॥२०॥

चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः ।
आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥२१॥

हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः परिवारितौ ।
तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु ॥२२॥

केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि ।
तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥२३॥

तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते ।
शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम् ।
ॐ ॥२४॥

इति श्रीदुर्गासप्तशत्यां षष्ठोऽध्यायः पूर्णः ।

शिर बाहु कटे केई किये दानव और भी ।
हिला हिला जटा सिंह दैत्यों का रक्त पी गया ॥१८

क्षणही में सभी सैन्य किया नष्ट महामन्य ।
अतिकोपी उस महादेवी वाहन सिंह ने ॥१९॥

मरा सुन शिवा से यों शुम्भ ने धूम्रनेत्र को ।
सेनां को भी क्षीण हुई देवी के क्रुद्ध सिंह से ॥२०

हुवा कुपित दैत्येश अधर स्फुरने लगा ।
आज्ञा दी शुम्भ ने चण्ड मुण्ड दानव युग्म को ॥२१

हे चण्ड ! मुण्ड ! अपना बल ले पहुँचो वहां ।
शीघ्र ही जाकर उसे लाओ पकड के यहां ॥२२॥

केश खींचो तथा बांधो, यदि संशय होय तो ।
युद्ध के बीच शस्त्रों से दैत्यों से मार दो उसे ॥२३॥

मार के उस दुष्टा को और सिंह पछाड के ।
शीघ्र आओ उसे बांध लाओ पकड के यहां ॥२४॥

श्रीहरिशास्त्रिविरचित हिन्दी दुर्गा पाठ में
छठा अध्याय पूर्ण ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥१॥

आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः ।
चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः ॥२॥

ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम् ।
सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृङ्गे महति काञ्चने ॥३॥

ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः ।
आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः ॥४॥

ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन् प्रति ।
कोपेन चास्या वदनं मषीवर्णमभूत्तदा ॥५॥

भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद् द्रुतम् ।
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी ॥६॥

विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा ।
द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा ॥७॥

अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा ।
निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा ॥८॥

सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान् ।
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्बलम् ॥९॥

पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान् ।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान् ॥१०॥

तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह ।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्यतिभैरवम् ॥११॥

एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम् ।
पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत् ॥१२॥

तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः ।
मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि ॥१३॥

बलिनां तद् बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम् ।
ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा ॥१४॥

असिना निहताः केचित्केचित्खट्वाङ्गताडिताः ।
जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा ॥१५॥

ऋषि बोले ॥१॥

आज्ञा लिये चले दैत्य आगे के चण्ड मुण्ड ले ।
चतुरंगी सैन्य लिये अस्त्र शस्त्र उठा उठा ॥२॥

देवी को उनने देखा मुसुकाती विराजती ।
सिंह पै स्थित थी दिव्य शैल के स्वर्ण शृंग पै ॥३

वे उसे देख लाने को उद्योग करने लगे ।
चाप खींचे खड्ग धारे उसके पास आगये ॥४॥

तब देवी शत्रुओं के प्रति कोपित हो उठी ।
कोप से इसका वक्त्र मषीवर्ण हुआ तब ॥५॥

कुटिल भ्रुकुटि वाले अम्बिका के ललाट से ।
कालि करालवदना निकली खड्ग पाश ले ॥६॥

विचित्र खट्वाङ्ग लिए नरमाला गले धरे ।
पहने व्याघ्र का चर्म सूखी अति भयङ्करी ॥७॥

बडे विशाल मुख की जिह्वा लपलपा रही ।
गडी आंखें लाल, नाद पूरती थी दिगन्त में ॥८॥

वेग से वह आ कूदी दैत्यों को मारती रही ।
सेना में इन दैत्यों को खागई बल पूर्व ही ॥९॥

पीठ के और आगे के योधा घण्टा समेत ही ।
गजों को एक कर से मुख में फेंकती रही ॥१०॥

घोडों के संग योधों को रथों के साथ सारथि ।
मुखमें फेंक दातों से चबाती भयदा हुई ॥११॥

केशो में पकडा एक गले में एक ओर को ।
अन्य को पैर से दाब उर से अन्य को तथा ॥१२॥

दैत्यों को उन शस्त्रों को महास्त्रों को महेश्वरी ।
मुख में रोक दांतों से तोडती थी प्रकोप से ॥१३॥

उन दुर्जन दैत्यों की सेना में बहु दानव ।
किये मर्दित, खायेभी, ताडा अन्यान्यको वहां ॥ १४

खड्गाहत हुए केई केई खट्वाङ्ग से मरे ।
अनेक दैत्य दांतों की नोकों से छिन्न हो पडे ॥१५

क्षणेन तद् बलं सर्वमसुराणां निपातितम् ।
दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम् ॥

शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः ।
छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्रशः ॥१७

तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम् ।
बभुर्यथार्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम् ॥१८॥

ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी ।
काली करालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥१९॥

उत्थाय च महासिं हं देवो चण्डमधावत ।
गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत् ॥२०

अथ मुण्डोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् ।
तमप्यपातयद् भूमौ सा खड्गाभिहत रुषा ॥२१॥

हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम् ।
मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम् ॥२२॥

शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च ,
प्राह प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम् ॥२३॥

मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू ।
युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यति ॥२४॥

ऋषिरुवाच ॥२५॥

तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ ।
उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः॥२६

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता ।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि ॥
॥ॐ॥२७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
देवीमाहात्म्ये चण्डमुण्डवधो नाम सप्तमोऽध्यायः

असुरों की सभी सेना क्षण में यों विनष्ट की ।
देख चण्ड भगा आया भीषणा कालिका प्रति ॥१६

भयकारी बाण छोडे भीमाक्षी पर दैत्य ने ।
फैंके हजारों चक्रों से मुण्ड ने ढांप ही दिया ॥१७॥

उसके मुख में जाते चक्र यों सोहने लगे ।
अनेक रवि के विम्ब जैसे बादल में घुसे ॥१८॥

तब काली हँसी रुष्टा भयकारी निनाद से ।
कराल मुख में दांत दुर्दश चमके घने ॥१९॥

उठा कृपाण हूं बोल झपटी चण्ड पै शिवा ।
पकडे इसके केश काटा मस्तक खड्ग से ॥२०॥

अब तो मुण्ड भी दौडा देखके चण्ड को पडा ।
इसे भी खड्ग से काट भूमी पर गिरा दिया ॥२१॥

पडा यों चण्ड को देख महा विक्रम मुण्ड को ।
बची सेना दिशाओं में भय विह्वल हो भगी ॥२२

चण्ड का शिर ले काली वहीं पकड मुण्ड को ।
अट्टहास किया बोली चण्डिका के समीप आ ॥२३

उपहार दिये मैंने चण्ड मुण्ड महा पशू ।
मारेगी युद्धमख में स्वयं शुंभ निशुम्भ तू ॥२४॥

ऋषि बोले ॥२५॥

देख, लाए हुए दोनों चण्ड मुण्ड महासुर ।
कल्याणी चण्डिका बोली कालिका को शुभं वचः ॥२६॥

जो तू पकड लाई है चण्ड को और मुण्ड को ।
चामुण्डा नाम से होगी लोक विख्यात देवि ! तू ॥२७॥

श्रीहरिशास्त्रिविरचित हिन्दी दुर्गापाठ में
सातवां अध्याय पूर्ण हुआ ।

अष्टमोऽध्यायः

ॐ ऋषिरुवाच ॥१॥

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते ।
बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥२॥
ततः कोपपराधीनचेताः शुम्भः प्रतापवान् ।
उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह ॥३॥

अद्य सर्वबलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः ।
कम्बूनां चतुरशीतिर्निर्यान्तु स्वबलैर्वृताः ॥४॥
कोटिवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै ।
शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया ॥५॥
कालका दौर्हृदा मौर्याः कालकेयास्तथासुराः ।
युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम ॥६॥
इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरवशासनः ।
निर्जगाम महासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥७॥

आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम् ।
ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम् ॥८॥
ततः सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप ।
घण्टास्वनेन तान्नादमम्बिका चोपबृंहयत् ॥९॥
धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा ।
निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारिताननाः ॥१०
तं निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् ।
देवी सिंहस्तथा काली सरोषैः परिवारिताः ॥११
एतस्मिनन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम् ।
भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विताः ॥१२॥
ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः ।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः ॥१३
यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम् ।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ ॥१४॥
हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः ।
आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते ॥१५

ऋषि बोले ॥१॥

ऐसे नष्ट हुए देख चण्ड औ मुण्ड दैत्य को ।
तथा बहुतसी सेना क्षीण देख महासुर ॥२॥
अति कोप पराधीन हुवा शुंभ प्रतापवान् ।
आज्ञा दी सब सेना के उद्योग असुरौघ को ॥३॥
आज सारे बल लिये छयासी दैत्य उपायुध ।
चौरासी कम्बु कुल के जाँय सेना निजी लिए ॥४
पचास कोटि-वीर्याख्य दानवों के चलें कुल ।
तथा सौ कुल धौम्रों के जावें मेरे निदेश से ॥५॥
कालकेयासुर तथा मौर्य्य कालक दौर्हृद ।
सज्ज हों रण में जावें शीघ्र मेरे निदेश से ॥६॥
आज्ञा दे यों दानवेश शुंभ भैरवशासन ।
महासैन्य हजारों ले निकला रण के लिये ॥७॥
आते निहार चण्डी ने उस भीषण सैन्य को ।
ज्यानादों से भर दिया भू और नभ गर्भ को ॥८॥
सिंह ने जब किया महानाद महीपते ! ।
घण्टा से अम्बिका ने वे सभी नाद बढा दिये ॥९॥
ज्या. सिंह, घण्टानादों के शब्दसे दिग् गुंजारती ।
विशालमुख काली ने जीते निज निनाद से ॥१०
इसको सुन दैत्यों की सेना ने सब ओर से ।
देवी सिंह तथा काली सबको घेर ही लिया ॥११
इस ही बीच में भूप ! दैत्यों के नाश के लिए ।
सुखार्थ सुर सिंहों के बहुवीर्या बलान्विता ॥१२॥
ब्रह्मा शिव स्कन्द विष्णु इन्द्र की शक्तियाँ वहाँ ।
चण्डिका के पास आईं उनके वे स्वरूप ले ॥१३॥
जिसका रूप जैसा था जैसा भूषण वाह था ।
वही ले उसको शक्ति दैत्यों से लड़ने गईं ॥१४॥
माला कमण्डलु लिए बैठी हंस विमान पै ।
ब्रह्मशक्ति प्राप्त हुई ब्रह्माणी कहते इसे ॥१५॥

माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी ।
महाहिमलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषिणा ॥१६॥

कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना ।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी ॥१७

तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता ।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥१८॥

यज्ञवाराहमतुलं रूपं या बिभ्रतो हरेः ।
शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम् ॥१९

नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः ।
प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः ॥२०॥

वज्रहस्ता तथैवेन्द्री गजराजोपरि स्थिता ।
प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा ॥२१॥

ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः ।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याऽऽह चण्डिकाम् ॥

ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा ।
चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवा शतनिनादिनी ॥२३॥

सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता ।
दूत त्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः ॥

ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ ।
ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः ॥२५॥

त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः ।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ ॥२६॥

बलावलेपादथ चेद् भवन्तो युद्धकाङ्क्षिणः ।
तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः ॥२७

यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम् ।
शिवदूतीति लोकेऽस्मिन् ततः सा ख्यातिमागता ॥

तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वाख्यातं महासुराः ।
अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र कात्यायनी स्थिता ॥२९॥

ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः ।
ववर्षुरुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः ॥३०॥

सा च तान् प्रहितान् बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान् ।
चिच्छेद लीलयाऽऽध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥३१॥

बैल पै बैठ माहेशी त्रिशूल वर धारती ।
भुजंग कंकणवती आई चन्द्रकला धरे ॥१६॥

कौमारी शक्ति कर में लिये बैठी मयूर पै ।
दैत्यों से लडने आई अम्बिका गुहरूपिणी ॥१७॥

वैष्णवी शक्ति भी आई बैठी बिहग राज पै ।
शंख चक्र गदा शार्ङ्ग खड्ग हाथ लिये हुई ॥१८॥

अनूप रूप हरि का धारे यज्ञ वराह का ।
वाराही शक्ति भी आई देह धारे वराह का ॥१९

नृसिंह के नारसिंही धारती तुल्य देह को ।
आई वहां जटाओं से डुलाती तारकावलि ॥२०॥

वज्र हाथ लिए ऐन्द्री बैठी थी गजराज पै ।
हजार नेत्र की आई जैसा इन्द्र तथा वह ॥२१॥

उन दैवी शक्तियों से घिरे शङ्कर ने कहा ।
चण्डी को मम प्रीत्यर्थ मारो दानव शीघ्र ही ॥२२

तब देवी तनू में से निकली अति भीषणा ।
चण्डिका शक्ति अत्युग्र सौ शिवा सम चीखतीं ॥२३

वह बोली धूम्रजटी शिवको अपराजिता ।
भगवन् ! दूत हो जाओ पास शुंभनिशुंभके ॥२४

गर्वीले दैत्य दोनों ही शुंभ और निशुंभको ।
जो और भी वहां दैत्य आये युद्धार्थ हैं, कहो ॥२५

त्रैलोक्य-राज्य ले इन्द्र देवता हविभाग लें ।
तुम पातालमें जाओ यदि जीवन चाहते ॥२६॥

बलगर्वभरे युद्ध चाहो तो शीघ्र आइये ।
तुमारे मांस से मेरी शिवाएं परितृप्त हों ॥२७॥

नियुक्त दूत देवीने किया था शिवको स्वयम् ।
इससे शिवदूती ही लोक ख्यात हुई वह ॥२८॥

शिवोक्त बात देवी की सुन वे भी महासुर ।
क्रोध पूरित हो आये जहां कात्यायनी रही ॥२९॥

आते ही उस देवी को बाणशक्ति सुवृष्टिसे ।
लगे बरसने उग्रकोप संयुत दैत्य वे ॥३०॥

वह देवी दैत्यमुक्त शरशूलादि शस्त्रको ।
काटती थी कौतुकसे चापसे बाण छोडती ॥३१॥

तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान् ।
खट्वाङ्गपोथितांश्चारीन् कुर्वती व्यचरत्तदा ॥३२

कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान् हतौजसः ।
ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून् येन येन स्म धावति ॥३३

माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी ।
दैत्यान्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना ॥३४

ऐन्द्रीकुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः ।
पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः ॥३५॥

तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः ।
वराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः ॥३६॥

नखैर्विदारितांश्चान्यान् भक्षयन्ती महासुरान् ।
नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगम्बरा ॥३७॥

चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः ।
पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा ॥३८

इतिमातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान् ।
दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ॥३९॥

पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान् मातृगणार्दितान् ।
योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः ॥४०॥

रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः ।
समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणस्तदासुरः ॥४१॥

युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः ।
ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत् ॥४२॥

कुलिशेनाहतस्याशु बहु सुस्राव शोणितम् ।
समुत्तस्तुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥४३॥

यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः ।
तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः ॥४४॥

ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः ।
समं मातृभिरत्युग्रशस्त्रपातातिभीषणम् ॥४५॥

पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा ।
ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः ॥४६॥

वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह ।
गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम् ॥४७॥

उसके अग्रतो काली शूलसे छेदती रिपु ।
खट्वाङ्ग से शत्रुचूर्ण करती फिरती रही ॥३२॥

कमण्डलू के जलसे ओजतेजविहीन भी ।
करती रिपुओंको थी ब्राह्मी जाती जहां जहां ॥३३

माहेशी शूलसे और चक्रसे वैष्णवी वहां ।
कौमारी शक्तिसे शत्रु मारती कोपसे भरी ॥३४॥

ऐन्द्रीने सैकंडो मारे वज्रसे दैत्य दानव ।
छिदे कटे पडे भूपै रक्तको वर्सते हुए ॥३५॥

तुण्ड प्रहारसे नष्ट डाढसे वक्षमें छिदे ।
बाराही ने पछाडे थे चक्रसे काटमी दिये ॥३६॥

नखोंसे फाडती और खाती राक्षस वृन्दको ।
घूमती थी नारसिंही दिशोंमें नाद पूरती ॥३७॥

प्रचण्ड अट्टहासोंसे त्रस्तहो भूमिपै पडे ।
शिवदूती तब उन्हीं असुरों को चबा गई ॥३८॥

यों मातृगणको क्रुद्ध दैत्योंके मारते हुए ।
देख, नाना उपायोंसे भागे दानव सैनिक ॥३९॥

भगते देख दैत्योंको मातरोंसे प्रपीडित ।
लडने आगया दैत्य रक्तबीज महासुर ॥४०॥

इसके रक्तकी बुंद देहसे भूमिपै गिरै ।
तभी प्रगट होता है वैसाही और दानव ॥४१॥

वह दानव ऐन्द्रीसे लडा हाथ गदा लिये ।
ऐन्द्रीने ताडितकिया बज्रसे रक्तबीजको ॥४२॥

वज्रकी चोटसे रक्त उसका खूबही बहा ।
उससे प्रगटे नानादैत्य वैसे पराक्रमी ॥४३॥

उसकी देहसे बुंदे जितनी रक्तकी पडीं ।
उतने ही दैत्य उठे वैसेही बलवीर्यवान् ॥४४॥

वे रक्तजात भी दैत्य लडे मातृसमूहसे ।
उग्रशस्त्रप्रहारोंसे भयकारक युद्धमें ॥४५॥

पुनः कुलिशसे शीस इसका क्षतजो हुवा ।
तब रक्त बहा दैत्य हजारों हीं खड़े हुए ॥४६॥

वैष्णवीने समरमें इसे मारा स्वचक्रसे ।
गदा घातकिया इन्द्रशक्तिने असुरेश पै ॥४७॥

वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्रावसम्भवैः ।
सहस्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः ॥४८॥

शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना ।
माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम् ॥४९॥

स चापि गदया दैत्यः सर्वा एवाहनत् पृथक् ।
मातृः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः ॥५०॥

तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि ।
पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः ॥५१॥

तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत् ।
व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम् ॥५२॥

तान् विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरा ।
उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं वदनं कुरु ॥५३॥

मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान् ।
रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिना ॥५४

भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान् ।
एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति ॥५५॥

भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे ।
इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम् ॥५६

मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम् ।
ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम् ॥५७॥

न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि ।
तस्याहतस्य देहात् बहु सुस्राव शोणितम् ॥५८॥

यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति ।
मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुराः ॥५९॥

तांश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम् ।
देवी शूलेन वज्रेण बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः ॥६०॥

जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम् ।
स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसङ्घसमाहतः ॥६१॥

निरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः ।
ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप ॥६२॥

तेषां मातृगणो जातो ननर्तासृङ्मदोद्धतः ॥ॐ॥६३

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
देवीमहात्म्ये रक्तबीजवधो नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

चक्रसे छिन्न उसके शोणित स्राव हों उठे ।
तन्प्रमाण हजारों ही दैत्योंसे छागया जगत् ॥४८॥

कौमारी ने शक्तिमारी बाराहीने कृपाणसे ।
माहेशी ने शूलमारा साथही रक्तबीजपै ॥४९॥

कोपसे पूर्ण हो दैत्य रक्तबीजमहासुर ।
गदासे सबको मारा शक्तियोंको पृथक् पृथक् ॥५०

शक्ति शूलादि से छिन्न उसके देहसे गिरे ।
रक्त प्रवाहसे भूपै उठे दानव सैकडों ॥५१॥

उन शोणित संभूत असुरोंसे सभी जगत् ।
छागया इससे सारे देवों में भय आगया ॥५२॥

सुरोंको यों डरे देख चण्डीने शीघ्र हो कहा ।
कालीको, अपना वक्त्र वितीर्ण करलो अभी ॥५३

शस्त्र संघातसे जात बून्दों को रक्तबीजके ।
असुरों को वेगभरे मुखसे तुम पीजिए ॥५४॥

तज्जात असुरों को खाती विचर युद्धमें ।
रक्तहीन हुवा दैत्य शीघ्र यों नष्ट होयगा ॥५५॥

खाये हुए ये तेरेसे उपजेंगे पुनर्नहीं ।
ऐसा कह उसे देवीने किया शूलघात तो ॥५६॥

मुखसे पीगई कालो रक्तको रक्तबोज के ।
उसने भी गदाघात चण्डिकापै किया पुनः ॥५७॥

गदा की चोट ने पोडा चण्डी को कुछ भी न की ।
बहु रक्त स्राव हुवा उसके क्षत देह से ॥५८॥

जहां तहां हो चामुण्डा, उसे पीती रही वहाँ ।
उठे जो इसके रक्त पात से बहु दानव ॥५९॥

उनका पी गई रक्त चामुण्डा खागई उन्हें ।
देवी ने शूलकुलिश बाण खड्गादि से उसे ॥६०॥

मारा कि जिसका रक्त चामुण्डा सब पी गई ।
शस्त्र संघाहत हुवा आपडा वह भूमि पै ॥६१॥

नीरक्त हो महीपाल रक्तबीज महासुर ।
तब वे देव अतुल हर्ष को प्राप्त हो नृप ! ॥६२॥

उनका मातृगण भी नाचा मदप्रमत्त हो ॥६३॥

श्रीहरिशास्त्रि विरचित हिन्दी दुर्गापाठ में
८वां अध्याय पूर्ण हुवा ।

अथ नवमोऽध्यायः

'ॐ' राजोवाच ॥१॥

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् भवता मम ।
देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम् ॥२॥

भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते ।
चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः ॥३॥

ऋषिरुवाच ॥४॥

चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते ।
शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे ॥५॥

हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन् ।
अभ्यधावन्निशुम्भोऽग्र मुख्ययासुरसेनया ॥६॥

तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः ।
संदष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः ॥७॥

आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः ।
निहन्तुं चण्डिकां कोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः ॥८

ततो युद्धमतीवासोद् देव्या शुम्भनिशुम्भयोः ।
शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः ॥९॥

चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः
ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥१०॥

निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम् ।
अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम् ॥११॥

ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम् ।
निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम् ॥१२

छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः ।
तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखगताम् ॥१३

कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः ।
आयान्तं मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत् ॥१४॥

आविध्याथ गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति ।
सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता ॥१५॥

राजा बोला ॥१॥

विचित्र यह देवीका भगवन् आपने कहा ।
माहात्म्य और चरित रक्तबीजप्रसंग से ॥२॥

अब मैं सुनना चाहूं अन्तमें रक्तबीजके ।
शुम्भने क्या किया काम और क्रुद्धति शुम्भने ॥३॥

ऋषि बोले ॥४॥

किया अतुलही कोप बधपै रक्तबीजके ।
औरोंके भी मरणपै शुम्भ और निशुम्भने ॥५॥

सेना हत हुई देख कोपमें भरता हुवा ।
निशुम्भ अब आयाथा मुख्यसेनालिए हुए ॥६॥

उसके अग्रतः पीछे बगलमें महासुर ।
क्रुद्ध हो डसते होंठ देवीको मारने चले ॥७॥

शुम्भभी निज सेनासे घिरा आया महाबली ।
लडके मातृकाओंसे चण्डीको मारने चला ॥८॥

तब युद्धहुवा देवी और शुम्भनिशुम्भ में ।
वर्सते बाण दोनोंके जैसे बादल बर्सते ॥९॥

चण्डीने उन बाणोंको काटा निजशरौघसे ।
दोनों ही दानवेन्द्रों को शस्त्रोंसे बींधभी दिया ॥१०

निशुम्भने तीक्ष्णखड्ग और सुन्दर ढाल ले ।
सिंहको शिरमें मारा देवीवाहनश्रेष्ठको ॥११॥

सिंह क्षत हुआ देख देवीने क्षुरपास्त्र से ।
निशुम्भका खड्ग ढाल टुकडे टुकडे किया ॥१२॥

कहतेही खड्ग ढाल शक्ति फैंकी सुरारिने ।
चक्रसे संमुखप्राप्त उसेभी शीघ्र तोडदा ॥१३॥

कोपाविष्ट हुवा शूललिया दैत्य निशुम्भ ने ।
आते उसे मुष्टिमार देवीने चूर्णही किया ॥१४॥

उसने भी घुमा फैंकी गदा जो चण्डिका प्रति ।
देवीसे वहभी शूल-छिन्न हो भस्म होगई ॥१५॥

ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम् ।
आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले ॥१६॥

तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे ।
भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम् ॥१७॥

स रथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः ।
भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः ॥१८॥

तमायान्तं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत् ।
ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम् ॥१९॥

पूरयामास ककुभो निजघण्टा स्वस्वनेन च ।
समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना ॥२०॥

ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः ।
पूरयामास गगनं गां तथैवं दिशो दश ॥२१॥

ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत् ।
कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः ॥२२

अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह ।
तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ ॥२३॥

दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा ।
तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः ॥२४॥

शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा ।
आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया ॥२५

सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम् ।
निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवानवनीपते ॥२६॥

शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् ।
चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥२७॥

ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम् ।
स तदाभिहतो भूमौ मूर्छितो निपपात ह ॥२८॥

ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः ।
आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा ॥२९॥

पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः ।
चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम् ॥३०॥

ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गातिनाशिनी ।
चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान् ॥३१

फिर आते हुए देख दैत्यको फरसा लिए ।
देवीने मार बाणोंसे भूमीपर गिरा दिया ॥१६॥

भीमविक्रम भाईके गिरतेही निशुंभके ।
शुंभ क्रुद्ध हुवा आया देवीको शीघ्र मारने ॥१७॥

ऊंचे रथस्थित हुवा वह खड्ग लिए बडे ।
नभ आठ भुजाओंसे व्यापता सोहने लगा ॥१८॥

आतेदेख उसे देवी ने फूंका शङ्ख जोरसे ।
ज्याशब्दभी धनुषका किया अत्यन्त दुःसह ॥१९॥

निजघण्टा नादसे भी दिशऐं पूरने लगी ।
जो सभी दैत्यसेनाका करता तेज नष्ट था ॥२०॥

सिंहने तब नादोंसे गजोंके मद सोखते ।
आकाशपूरित किया भूमि और दिशा दस ॥२१॥

नभमें कूद काली ने ताडी जो हाथसे मही ।
पहलेके शब्द सभी उससे लीन होगये ॥२२॥

जोरसे शिवदूतीने अट्टहास किया वहां ।
दैत्य त्रस्त हुए सारे शुंभ क्रुद्ध हुवा महा ॥२३॥

खडा रह जरा दुष्ट ! अम्बिकाने कहा तभी ।
आकाशस्थित देवोंने जयहो जयहो कहा ॥२४॥

आतेही शुंभने छोडी ज्वालाभीषणशक्ति जो ।
आतीको हो अम्बिकाने महोल्कासे निरस्तको ॥२५

सिंह का सा शुंभ–नाद छाया त्रैलोक्य गर्भमें ।
वह जीतगया भूप ! घोर निर्घात शब्दको ॥२६॥

शुंभके बाण देवीने देवीके बाण शुंभने ।
काटे उग्र स्वबाणों से सैंकडों वा सहस्रशः ॥२७॥

तब क्रुद्धाचण्डिकाने उसे मारा त्रिशूलसे ।
शूलाहत हुवा शुंभ मूर्च्छा खा भूमिपै गिरा ॥२८॥

निशुंभ ने चेतना पा लिया धनुष हाथ में ।
मारा शरों से देवीको कालिका और सिंहको ॥२९॥

फिर दैत्येशने बाहु सहस्र दसधारके ।
चक्रायुधोंसे देवीको छादिया सब ओरसे ॥३०॥

तब क्रुद्ध हुई देवी दुर्गा दुर्गातिनाशिनी ।
छेदा शरोंसे उसको चक्रां और शरौघको ॥३१॥

ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम् ।
अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः ।।३२।।
तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका ।
खड्गेन शितधारेण स च शूल समाददे ।।३३।।
शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरार्दनम् ।
हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका ।।३४
भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोऽपरः ।
महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन् ।।३५।।
तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः ।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि ।।३६
ततः सिंहश्चखादोग्रं दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् ।
असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान्।।३७
कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः ।
ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः ।।३८।।
माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे ।
वाराहीतुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि ।।३९
खण्डं खण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाःकृताः ।
वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे ।।४०।।
केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात् ।
भक्षिताश्चापरे कालीशिवदूतीमृगाधिपैः ।ॐ४१
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे
देवीमाहात्म्ये निशुम्भवधो नाम नवमोऽध्यायः।।

निशुंभ तब ले दौड़ा गदा को चण्डिका प्रति ।
मारने के लिए दैत्य सेना साथ लिए हुए ।।३२
काट डाली चण्डिका ने आतेही उसकी गदा ।
खड्गसे तीक्ष्णधारा के उसने शूल लेलिया।।३३।
शूल हाथ लिए आते देवशत्रु निशुंभ का ।
बेधा हृदय अम्बा ने वेग से फेंक शूल से ।।३४
शूल से भिन्न उसके हृद् से प्रकट और ही ।
महावीर्य बली दैत्यतिष्ठ यों बोलता हुआ ।।३५
उसका व्यक्त होते का देवी ने हंसके शिर ।
बोलता ही काट दिया आ गिरा वह भूमि पै।।३६
सिंह ने खालिए दैत्य डाढ चूर्णित शीस के ।
औरों को खागई काली शिवदूती प्रमोद से।।३७
कौमारी शक्ति से केई मरे भिन्न महासुर ।
और केई ब्रह्मशक्ति मन्त्र पावन वारि से ।।३८
अनेक दैत्य माहेशी शूल से भिन्न हो गिरे ।
वाराही तुण्ड से केई चूर चूर हुए वहां ।।३९।।
खण्ड खण्ड किए दैत्य वैष्णवी ने स्वचक्र से ।
और केई मरे दैत्य ऐन्द्री प्रेरित वज्र से ।।४०
और केई मरे 'भी' से रण छोड़ भगे कई ।
शिवदूती, सिंह, काली खागये दैत्य शेष को ।।४१

श्रीहरिशास्त्रिकृत हिन्दी दुर्गापाठ में
नवाँ अध्याय पूर्ण ।

अथ दशमोऽध्यायः

ऋषिरुवाच ।।१।।

निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसंमितम्।
हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ।।२।।

बलाबलेपदुष्टे ? त्वं मा दुर्गे गर्वमावह ।
अन्यासां बलमाश्रित्य युध्यसे यातिमानिनी।।३।।

देव्युवाच ।।४।।

एकैवाप जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा ।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः ।।५।।

ततः समस्तास्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखालयम्।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका।।६।।

देव्युवाच ।।७।।

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदा स्थिता ।
तत्संहृत मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव ।।८।।

ऋषिरुवाच ।।९।।

ततः प्रववृते युद्धं देव्या शुंभस्य चोभयोः ।
पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम् ।।१०।।

शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः ।
तयोर्युद्धमभूद् भूयः सर्वलोकभयङ्करम् ।।११।।

दिव्यान्यस्त्राणिशतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका ।
बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभि ।।१२।

मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी ।
बभञ्ज लीलयैवोग्रहूँकारोच्चारणादिभिः ।।१३

ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः ।
सापि तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः।।१४

छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे ।
चिच्छेद देवी चक्रेणतामप्यस्य करे स्थिताम्।१५

ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत् ।
अभ्यधावत्तदा देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः ।।१६।।

ऋषि बोले ।।१।।

प्राणप्रिय लघुभ्राता मृत देख निशुम्भ को ।
तथा सेना मरी देख क्रुद्ध हो शुम्भ ने कहा ।।२

बलाहंकार से दुष्टे न गर्व कर चण्डिके ।
दूसरों के सहारे ही लडती मान धारती ।।३।।

देवी बोली ।।४।।

एक ही हूँ जगत में मैं दूसरी और कौन है ?।
देख दुष्ट मुझी में ये घुसे मेरी विभूतियाँ ।।५।।

तभी लीन हुई सारी ब्रह्माणी आदि देवियां ।
शरीर में अम्बिका के एक ही अम्बिका रही।।६।

देवी बोली ।।७।।

मेरी विभूति से मैं थी बहुरूप लिए यहां ।
समेटा वह मैं एक ही हूँ तू उठ युद्ध में ।।८।।

ऋषि बोले ।।९।।

तब युद्धारंभ हुवा देवी का और शुम्भ का ।
देवों के और दैत्यों के देखते अति दारुण ।।१०

बाणों की उग्र वर्षा से तेज शस्त्रास्त्र संघ से ।।
इनका युद्ध था भारी भयदायी त्रिलोक में।।११।।

दिव्यास्त्र सैंकड़ों छोड़े अम्बिका ने उन्हें वहीं ।
दैत्येन्द्र ने काट दिया पत्यस्त्रों के प्रयोग से।।१२।।

शुंभ से मुक्त दिव्यास्त्र थे उन्हें परमेश्वरी ।
लीला से ही काटती थी उग्र हूँकार आदि से।।१३

शुम्भने छादिये देवी पर सायक सैंकड़ों ।
देवी ने निज बाणों सेले काटा धनुष दैत्यका।।१४

चापके कटजाने से दैत्यने शक्ति हाथ ली ।
देवी ने चक्रसे काटी उसे दैत्येकरस्थ ही ।।१५।।

तब खड्ग लिया ढाल शतचन्द्र प्रकाशवान् ।
देवी के संमुख हुआ वह दैत्येन्द्र भूमिप !।।१६

तस्यापतत एवाशु खड्गं विच्छेद चण्डिका ।
धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चाकेकरामलम् ।।१७।

आते ही उसका खड्ग देवीने स्वशरौघसे ।
काट डाला ढाल को भी जो था उज्ज्वल सूर्यसा।१७

हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारथिः ।
जग्राह मुद्गरं घोरम्बिकानिधनोद्यतः ।।१८।।

हताश्व होगया दैत्य गिरा धनुष सारथि ।
घोर मुद्गर ले आया अम्बिामारणोद्यमी ।।१८।।

चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः ।
तथापि सोऽभ्यवत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान् ।।१९।

देवीने तेज बाणोंसे छेदा मुद्गर दैत्यका ।
फिर भी वह दौड़ा ही उठाये मुष्टि वेग से ।।१९।।

स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः ।
देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत् ।।२०

मारी मुष्टिक अम्बाके वक्षपै दैत्यराज ने ।
देवीने उसको ताड़ा उरमें तलघात से ।।२०।।

तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले ।
स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः ।।२१।।

तलघाताहत हुवा भूमिपै आगिरा वहीं ।
सहसा ही दैत्यराज फिर वैसे खड़ा हुआ ।।२१।।

उत्पत्त्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः ।
तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका ।।२२

ऊंचा उछल देवी को उठा गगन में चढा ।
वहां भी जा निराधार चण्डिका उससे लड़ी।।२२

नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम् ।
चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम् ।।२३।।

आकाश में किया युद्ध चण्डिका दैत्यने मिथः ।
अपूर्व था वह मुनि-सिद्ध विस्मयकार था ।।२३।।

ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह ।
उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले ।।२४।।

अम्बिकाने किया युद्ध बहुकाल सुरारिसे ।
उछालके घुमा खूब पृथ्वी पर गिरा दिया ।।२४।।

स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः ।
अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया ।।२५

गिरा वह महीपै आ उठाए मुष्टि वेगसे ।
दुरात्मा दौड़ता आया चण्डीका वध चाहता।।२५

तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम् ।
जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि ।।२६।

चण्डिकाने पास आते उस दैत्यजनेश को ।
शूलसे उरमें बींध भूमीपर गिरा दिया ।।२६।।

स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः ।
चालयन् सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम्।२७

देवी शूलाहत हुवा वह निष्प्राण हो गिरा ।
हिलाता भूमिको सिन्धु द्वीप पर्वतसंयुक्त ।।२७।।

ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि ।
जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निमलं चाभवन्नृप ! ।।२८

दुष्टके हत होनेसे प्रसन्न सब होगये ।
जगत्स्वस्थ हुवा और नभ निर्मल होगया।।२८।।

उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः ।
सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासस्तत्र पातिते ।।२९।।

उल्काओं के साथ उग्रमेघ थे शान्त होगये ।
उसे गिरा, देख हुई नदियां मार्गवाहिनी ।।२९।।

ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः ।
बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वा ललितं जगुः ।।३०।।

हर्षपूर्णमना सारे हुए देव समूह भी ।
उसे गिरे देख, गाया गन्धर्वों ने मनोज्ञ ही।।३०।।

अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणा ।
ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः ।।३१

बजाए वाद्य औरोंने नाची देववराङ्गना ।
पवित्र मारुत बहे हुवा सुप्रभ सूर्य भी ।।३१।।

जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्तदिग्जनितस्वनाः।

अग्नियां शान्त जलती शान्त दिक् स्वनवान थीं।।

श्री दुर्गासप्तशत्यां दशमोध्यायः पूर्णः ।

श्री हरिशास्त्रिविरचित हिन्दी दुर्गापाठ में
१० वां अध्याय पूर्ण हुआ ।

अथ एकादशोऽध्यायः

पूर्वानुवृत्तः—

'ॐ' ऋषिरुवाच ॥१॥

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे
सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम् ।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभा-
द्विकाशिवक्त्रास्तु विकाशिताशाः ॥२॥

देवि प्रपन्नार्त्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य ॥३॥

आधारभूता जगतस्त्वमेका
महीस्वरूपेण यतः स्थितासि ।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैत-
दाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये ॥४॥

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया ।
संमोहितं देवि समस्तमेत-
त्त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः ॥५॥

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु ।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥६॥

सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी ॥
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥७॥

सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते ॥
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥८॥

कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि ॥
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि
नमोऽस्तु ते ॥९॥

ऋषि बोले ॥१॥

मारा शिवाने जब शुम्भ दैत्य,
इन्द्राग्नि को अग्र लिए सुरों ने ।
की अंबिका की स्तुति इष्ट पाके,
प्रसन्न आशा-मुख हर्ष वाले ॥२॥

हो देवि भक्तार्ति हरे प्रसन्न,
प्रसन्न हो मा सब विश्व की तू ।
प्रसन्न हो ईश्वरि विश्व पाल,
तू ईश्वरी सर्व चराचरों की ॥३॥

आधार है तू जग का इकेली
तू ही स्थिता (खडी) है धरणी स्वरूपा ।
जल स्वरूपस्थित आप ही से
समृद्ध है सर्व (विश्व) अवार्यवीर्ये ॥४॥

तू वैष्णवी शक्ति अनन्त वीर्या,
है विश्व का बीज अवाच्य माया ।
मोहा तुह्मी ने जग देवि सारा,
प्रसन्न तू ही जन मुक्ति हेतु ॥५॥

विद्या सभी देवि विभेद तेरे,
स्त्रियां कला युक्त सभी जगत्की ।
है पूर्ण सारा तुझ एक ही से
क्या हो स्तुति स्तव्यपरा परोक्ति ॥६॥

सर्वरूपा स्तुत हुई स्वर्ग-मुक्तिप्रदा तुह्मी ।
अब स्तुति करें तो क्या होंगी उत्कृष्ट
उक्तियाँ ॥७॥

सब की बुद्धि रूपा तू लोगों के हृदय स्थिता ।
स्वर्ग मोक्ष प्रदा देवि नारायणि !
तुम्हें नमः ॥८॥

परिणाम प्रदा तु है कला काष्ठास्वरूप से
(काष्ठादिरूप) विश्व संहार में शक्त
नारायणि तुह्मे नमः ॥९॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते
।।१०।।

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि ।।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ।।११।।

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे
सर्वस्यार्त्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ।१२।।

हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि ।।
कौशाम्भः क्षरिके देवि नारायणि
नमोऽस्तुते ।।१३।।

त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि ।।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोस्तु ते ।।१४।।

मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे ।।
कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोस्तु ते ।।१५।

शङ्खचक्रगदाशार्ङ्ग गृहीतपरमायुधे ।।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तुते ।।१६।।

गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुंधरे ।।
वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तुते ।।१७।।

नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान्कृतोद्यमे ।।
त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोस्तुते ।।१८।।

किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले ।।
वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते ।।१९।।

शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले ।।
घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते ।।२०।।

दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे ।।
चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ।।२१।।

लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे ध्रुवे ।।
महारात्रि महाविद्ये नारायणि नमोस्तु ते ।।२२।।
मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि ।।
नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणिनमोऽस्तु ते ।।२३।।

मङ्गलों में हित तु ही शिवा सर्वार्थदायिनी ।।
शरण्या त्र्यम्बका गौरी नारायणि
तुम्हें नमः ।।१०।।

सृष्टि स्थिति विनाशों की शवित तू है सनातनी ।
गुणाश्रया गुणमयी नारायणि तुम्हें नमः ।।११।।

आपन्न दीन दुःखी के रक्षा में तू लगी रहै ।।
सब की कष्ट हरणी नारायणि तुम्हें नमः ।।१२।।

ब्रह्माणी रूप धरती बैठी हंस विमान पै,
कुशाम्बुवर्सती देवि नारायणि ! तुम्हें नमः
।।१३।।

त्रिशूल चाँद भुजग धरै वृषभ पै चढ़ी ।।
माहेश्वरी स्वरूपा तू नारायणि तुम्हें नमः
।।१४।।

मोर कुक्कुट संयुक्ता निष्पापा शक्तिधारिणी ।।
कौमीरी रूप है तू ही नारायणि तुम्हें नमः ।।१५

शङ्ख चक्र गदा चाप कृपाण करधारिणी ।।
प्रसन्न हो वैष्णवी तू नारायणि तुम्हें नमः ।।१६।

उग्र चक्र लिए हाथ दाँत पै वसुधा धरी ।
शिवे वराह रूपा तू नारायणि तुम्हें नमः ।।१७।।

नृसिंह का उग्र रूप लिए दैत्यविनाशिनी ।
त्रलोक्यरक्षण करी नारायणि तुम्हें नमः ।।१८।।

किरीटिनि वज्र लिए सहस्राक्षी समुज्ज्वला ।
वृत्र प्राण हरी ऐन्द्री नारायणि तुम्हें नम. ।।१९

शिवदूती हुई तू ने मारे दैत्य महाबली ।
घोर रूपे महारावे नारायणि तुम्हें नमः ।।२०।।

कराल मुख डाढों की मुण्डमाला विभूषिता ।
चामुण्डा मुण्डमथनी नारायणि तुम्हें नमः ।।२१

लक्ष्मी लज्जा महाविद्या श्रद्धा पुष्टि स्वधा
ध्रुवा ।
महारात्री महाविद्या नारायणि तुम्हें नमः ।।२२।
मेधा सरस्वती बाभ्रवि तामसी नियते ।
तुष्ट हो ईशे नारायणि तुम्हें नमः ।।२३।।

सर्वस्रूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते ।।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तुते ।।२४

सर्व स्वरूप सर्वेशी सर्व शक्ति युता तु ही ।
हमें बचा भयों से तू नारायणि तुझे नमः।।२४

एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम् ।।
पातु न. सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि
नमोऽस्तु ते ।।२५।।

यह तेरा सौम्य मुख तीन नेत्र विभूषित ।
हमें बचावे भयसे कात्यायनि तुम्हें नमः ।।२५।।

ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ।।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते।।२६

कराल कान्ति का उग्र शूल दैत्यविदारण ।
हमें बचावे भयसे भद्रकालि तुम्हें नमः ।।२६।।

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत् ।।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः
सुतानिव ।।२७।।

हरती दैत्य तेजों को शब्द से पूरती जगत् ।
घण्टा बचावें पापों से हमें देवि सुतों सम ।।२७

असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः ।।
शुभाय खड्गो भवतु चंडिके त्वां नता
वयम् ।।२८।।

दैत्यों के रक्त मज्जासे लिसा उज्ज्वलकान्ति का
शुभदे खड्ग हमको चण्डिके हे तुम्हें नमः ।।२८

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान् ।।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ।।२९।।

राजी हुई रोग हरै सभी है ।
क्रुद्धा हुई काम सभी बिगाडै ।
तेरे जनों के न विपत् कभी हो
सेवें तुझे जो जग आसरा हो ।।२९।।

एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य
धर्मद्विषां देवि महासुराणाम् ।।
रूपैरनेकैर्बहुधात्ममूर्तिं
कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या ।।३०।।

संहार तूने यह जो किया है.
धर्मापराधी इन दानवों का ।
अनेक रूपों बहुमूर्तियों को
धरे करैगी वह और कौन ।।३०।।

विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपे-
ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या ।।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे
विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम् ।।३१।।

विद्या तथा शास्त्र विवेक दीप
आद्यादि वाक्य स्थित और कौन ।
महातमः पूर्ण ममत्व गर्त में
घूमा रही है इस विश्व को बता ।।३१।।

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
यत्रारयो दस्युबलानि यत्र ।।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम् ।।३२।।

जहां जहां राक्षस उग्र नाग,
वैरी जहां है दल दस्युओं के ।
दावाग्नि में और समुद्र में भी,
तू याद की सेवक पालती हैं ।।३२।।

विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम् ।।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः ।।३३।।

विश्वेशी तू ही जग पालती है ।
तू विश्व है विश्व धरै तुही है ।
विश्वेश से वन्द्य तुही भवानि
तुम्हे नमें वे जग आसरा दें ।।३३।।

देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्य: ।।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनिताँश्च महोपसर्गान् ।।३४।।

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि ।।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा
भव ।।३५।।

देवि प्रसन्न रह पाल हमें सदा ही
जैसे अभी असुर मार सुरक्षणा की ।
पाप प्रशान्त जग के कर नष्ट सारे,
उत्पात पाक परिजात उपद्रवों को ।।३४।।

प्रणतौ पै हो प्रसन्न विश्व पीडा निवारिणी ।
त्रैलोक्य से स्तुत हुई, लोकों को वरदान दे ।।३५।।

देव्युवाच ।।३६।।

वरदाहं सुरगणा वरं यं मनसेच्छथ ।।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम् ।।३७।।

देवी बोली ।।३६।।

वर दूं मैं देवताओ जो चाहो मनसे कहो ।
देती हूँ मैं तुम्हें आज जगद्रक्षण के लिए ।।३७।।

देवा ऊचुः ।।३८।।

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ।।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ।।३९।।

देव बौले ।।३८।।

त्रैलोक्य की सभी पीडा शान्त हो हे महेश्वरि ।
हमारे भी शत्रुओं का नाश यों करती रहो।।३९।।

देव्युवाच ।।४०।।

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे ।।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते
महासुरौ ।।४१।।

देवी बोली ।।४०।।

वैवस्वताख्य मनु के अठावीश युगान्त में
निशुम्भ शुम्भ दोनों ही जन्म लेंगे महासुर ।।४१।।

नन्दगोपगृहे जाता यशोदागर्भसंभवा ।।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचल-
निवासिनी ।।४२।।

नन्दगोपाल घरमें यशोदा गर्भ से हुई ।
मारूँगी तब मैं दोनों दैत्यों को विन्ध्यवासिनी
।।४२।।

पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले ।।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु
दानवान् ।।४३।।

फिर अति ही रोद्ररूप से भूमिलोक में ।
विप्रचित्ताख्य दैत्यों को मारूँगी अवतार ले
।।४३।।

भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान्वैप्रचित्तान्महासुरान् ।।
रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमी-
कुसुमोपमाः ।।४४।।

उनहो विप्रचित्तों को खाती मेरे सभी वहां ।
दांत हो जायंगे लाल दाडिमी पुष्प के सम
।।४४।।

ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः ।।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं
रक्तदन्तिकाम् ।।४५।।

स्वर्ग में देव मुझको जन मानवलोक में स्तुतियां
करके नित्य कहैंगे रक्त दन्तिका ।।४५।।

भुयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि ।।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ संभविष्याम्य–
योनिजा ।।४६।।

फिर सौवर्ष की होगी अनावृष्टि निरम्बुही ।
मुनियों से स्तुत हुई प्रगटूंगी अयोनिजा ।।४६।।

ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन् ।।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां
ततः ।।४७।।

सैंकड़ों लोचनों से मैं देखूंगी मुनिवृन्द को ।
कहेंगे मुझको लोग शताक्षी नाम से तभी
।।४७।।

ततोहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः ।।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः ।।
शाकम्भरीति विख्याति तदा यास्याम्यहं
भुवि ।।४८।।

फिर मैं सब लोगों को प्रगटाय स्व देह से ।
प्राणधारक शाकों से पोषूंगी वर्षणावधि
तब शाकम्भरी मेरा नाम विख्यात होयगा
।।४८।।

तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम् ।।
दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम
भविष्यति ।।४९।।

वहां ही मारदूंगी मैं दुष्ट दुर्गम दैत्य को ।
तब मेरा नाम दुर्गा देवी होगा त्रिलोक में
।।४९।।

पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले ।।
रक्षांसि भक्षयिष्यामि मुनीनां
त्राणकारणात् ।।५०।।

तब सारे मुनि मुझे करेंगे स्तुत लोक में ।
भीमा देवी तभी मेरा नाम होगा प्रसिद्धि में
।।५०।।

तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः ।।
भीमादेवीति विख्यातं तन्मे नाम
भविष्यति ।।५१।।

तब सारे मुनि मुझे करेंगे स्तुत लोक में ।
भीमा देवी तभी मेरा नाम होगा प्रसिद्धि में
।।५१।।

यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति ।।
तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वा सङ्ख्येय–
षट्पदम् ।।५२।।

फैलावेगा महा पीडा जभी 'अरुण' लोक में ।
तब मैं भ्रामरी रूप षट् पदी धारती हुई
।।५२।।

त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ।।
भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति
सर्वतः ।।५३।।

हितार्थ तीनों लोकों के मारूंगी उस दैत्य को ।
भ्रामरी नाम ले मेरी करेंगे स्तुति सर्वतः
।।५३।।

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ।।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसङ्क्षयम् ।।५४।।

ऐसे पीडा जब जब दानवों से उठे तभी ।
अवतार धरूँगी मैं करूँगी रिपुसंक्षय ।।५४।।

❖ ❖ ❖

अथ द्वादशाध्यायारम्भः ।

देव्युवाच ॥१॥
एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः ।
तस्याहं सकलां बाधां शमयिष्याम्यसंशयम् ॥२॥

मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम् ॥
कीर्तयिष्यन्ति ये तद्वद्वधं शुम्भनिशुम्भयोः ॥३॥

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः ।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्य-
मुत्तमम् ॥४॥

न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद्दुष्कृतोत्था न चापदः ।
भविष्यति न दारिद्र्यं नचैवेष्टवियोजनम् ॥५॥

शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः ॥
न शस्त्रानलतो यौधात्कदाचित्संभविष्यति ॥६॥

तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः ॥
श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं
हि तत् ॥७॥

उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान् ॥
तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम ॥८॥

यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ्नित्यमायतने मम ॥
सदा न तद्विमोक्ष्यामि सान्निध्यं तत्र मे
स्थितम् ॥९॥

बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे ॥
सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ॥१०॥

जानताजानता वापि बलिपूजां तथाकृताम् ॥
प्रतीच्छिष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं
तथा कृतम् ॥११॥

शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी ॥
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा
भक्तिसमन्वितः ॥१२॥

देवी बोली ॥१॥
जो मेरी इन स्तोत्रों से करेंगे स्तुति मानव ।
उनकी सब बाधाएं करूंगीं शान्त निश्चय ॥२॥

मधुकैटभ का नाश महिषासुर घात जो ।
पढ़ेंगे मानव तथा वध शुंभनिशुंभ का ॥३॥

अष्टमी और नवमी चौदस को सुचित्त जो ।
सुनेंगे भक्ति से मेरा यह माहात्म्य उत्तम ॥४॥

उनके कुछ दुष्कर्म न होगा न विपत्तियां ।
दारिद्र्य भी न आवेगा, न ही इष्ट वियोग हो ।
(विछुड़ेगा न इष्ट भी ॥५॥

नहीं होगा शत्रुभय दस्युसे वा न राजसे ।
अग्नि शस्त्र जलों से भी नहीं होगा उसे भय
॥६॥

इस से यह माहात्म्य पढना योग्य ध्यान से ।
भक्तिसे सुनने योग्य पर कल्याण धाम है ॥७॥

समस्त उपसर्गों को महामारी समुद्भव ।
और उत्पात तीनों को करता यह शान्त है ॥८॥

मेरा यह सदा पाठ होता है, जिस गेहमें ।
उसे न छोड़ती हूँ मैं मेरा सान्निध्य है वहां ॥९॥

पूजा में और बलिमें होम उत्सव आदिमें ।
यह मेरा चरित ही पाठ्य है श्रवणीय है ॥१०॥

ज्ञान-अज्ञान से भी जो बलि पूजा करे उसे ।
में स्वीकार करती हूँ होम जो अग्नि में किया
॥११॥

शरत्समय जो पूजा करते नर वार्षिकी ।
उसमें यह माहात्म्य सुन के भक्ति से युत ॥१२॥

सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः ।।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः ।।१३।।

सर्वबाधामुक्त हुआ धन धान्य समृद्धिवान् ।
मेरी कृपा से होगा यों तुम निश्चय जानिए
।।१३।।

श्रुत्वाममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः ।।
पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ।।१४।।

सुनता यह माहात्म्य तथा उत्पत्तियां शुभ ।
युद्ध विक्रम भी, लोग हो जाता भय हीन है
।।१४।।

रिपवः संक्षयं यन्ति कल्याणं चोपपद्यते ।।
नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम
शृण्वताम् ।।१५।।

शत्रु संक्षय पाते हैं कल्याण उपपन्न हों ।
कुल आनन्दित रहे जो मेरी महिमा सुनै ।।१५।

शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने ।।
ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ।।१६।

सभी शान्ति क्रियाओं में तथा दुःस्वप्न
दृश्य में ।
ग्रह पीडा उग्र हों तो मेरे माहात्म्य को सुने
।।१६।।

उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः ।।
दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ।।१७

उपद्रव मिटें सारे दारुणग्रह दोष भी ।
देखा हुवा बुरा स्वप्न हो जाता शुभ स्वप्न है
।।१७।।

बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् ।।
संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ।।१८।।

बाल ग्रहाकुल हुए बच्चों का शान्तिकार है ।
अनमेल मनुष्यों का मैत्री करण श्रेष्ठ है ।।१८

दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् ।।
रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ।।१९।।

दुराचारी मनुष्यों का करता बल नाश है ।
रक्ष भूतपिशाचों का पाठ से ही विनाशकृत्
।।१९।।

सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम् ।।
पशुपुष्पार्घधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः ।।२०।।

मुझे निकट लाना है मेरा यह माहात्म्य ही
पशु पुष्पार्घ धूपों से गन्ध दीपादि से तथा ।।२०

विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम् ।।
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या ।।२१।।

विप्रभोजन होमों से प्रोक्षणों से दिवा निशा ।
और भी बहुभोगों से दानों से हर्ष वर्ष में ।।२१

प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन्सकृत्सुचरिते श्रुते ।।
श्रुतं हरति पापानि तथारोग्यं प्रयच्छति ।।२२।।

जो हो वो वह मुझे होता एकबार इसे सुनें ।
सुना हुवा, पाप हरै देता नैरोग्यं भी यही ।।२२

रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम ।।
युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिबर्हणम् ।।२३।।

बचाता सब भूतों से, है मेरा जन्म कीर्तन ।
युद्धों में जो चरित है, मेरा दैत्यविनाश का
।।२३।।

तस्मिन्शृते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते ।।
युष्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः
कृताः ।।२४।।

उसे सुने से नरको रिपुका भय हो नहीं ।
स्ततियां तुम ने जो की तथा ब्रह्मर्षि वृन्द ने
।।२४।।

ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् ॥
अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः॥२५॥
दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः ॥
सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः ॥२६
राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो बध्यो बन्धगतोपि वा ॥
आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ॥२७
पपतत्सु चापि शस्त्रेषु सङ्ग्रामे भृशदारुणे ॥
सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा॥२८॥
स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत संकटात् ॥
मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा॥२९।
दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ॥३०॥

ऋषिरुवाच ॥३१॥

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका
चण्डविक्रमा ॥३२॥
पश्यतां सर्वदेवानां तत्रैवान्तरधीयत ॥
तेऽपि देवा निरातङ्काः स्वाधिकारान्यथा
पुरा ॥३३॥
यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः ॥
दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि ॥३४॥
जगद्विध्वंसिनि तस्मिन्महोग्रेऽतुलविक्रमे ।
निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः॥३५॥
एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः ॥
संभूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥३६॥
तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते ॥
सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं
प्रयच्छति ॥३७।
व्याप्तं तयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर ॥
महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥३८॥
सैव काले महामहारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा ॥
स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ॥३९
भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे ॥
सैवाभावे तथालक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥४०॥
स्तुता संपूजिता पुष्पैर्गन्धधूपादिभिस्तथा ॥
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे तथा
शुभाम् ॥४१॥

ब्रह्माने की सभी देती मनुष्यों को शुभा मति ।
वन में दूर पथमे घिरा हो दव अग्नि से ॥२५॥
सूने में चौर घेरे हो शत्रुओं से गृहीत हो ।
सिंह व्याघ्र पडे पीछे वन में वन के करी ॥२६॥
वधाज्ञा प्राप्त हो क्रुद्ध भूपसे बन्ध में पड़ा ।
वात में घूमता भी जो पोतस्थित समुद्र में ॥२७॥
गिरते बहु शस्त्रों से अतिदारुण युद्ध में ।
पडा हो घोर बाधा में वेदनार्दित भी हुवा ॥२८॥
सभी सङ्कट से मुक्त होता सुमरता इसे ।
मेरे प्रभाव से सिंह आदि तस्कर शत्रु भी ॥२९॥
दूर से भाग जाते हैं मेरे स्मरण मात्र से ॥३०॥

ऋषि बोले ॥३१॥

यों कहके भगवती चण्डविक्रम चण्डिका ॥३२॥

देखते देवगण के वहीं अन्तर्हिता हुई।
देव भी निर्भय हुए यथावत् अधिकार पा॥३३॥

शत्रु हीन हुए सारे यज्ञों को भोगने लगे ।
देवी से युद्ध में देवरिपु शुम्भ मरे तथा ॥३४॥
उस लोक-विरोधी के उग्रविक्रम पूर्ण के निशुम्भ
के नष्ट हुए(मरे पीछे)शेष पाताल में गये ॥३५
ऐसे भगवती देवी नित्या भी वह लोकमें ।
आविर्भूत हुई भूप! करती विश्व पालना ॥३६ ।
वही है मोहनी विश्व उपजाती वही जगत् ।
याची हुई ज्ञान देती तुष्टा देती समृद्धि है ॥३७॥

समस्त ब्रह्माण्ड उसी-से है व्याप्त नरेश्वर !
काली से जो प्रलय में महामारी स्वरूप हो ॥३८
वही होती महामारी कालमे सृष्टि भी वही ।
बनती है काल पाके वही स्थिति सनातनी ॥३९
सम्पत्समय लोगों के वही लक्ष्मी बने सदा ।
विपत्ति में वही होती अलक्ष्मी नाश हेतुका ।४०
पूजी गई स्तुत हुई पुष्प गन्धादि से वही ।
देती है धन पुत्रादि धर्म-धी और सद्गति ॥४१॥

अथ त्रयोदशाध्यायारम्भः ।

ऋषिरुवाच ॥१॥

एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम् ।।
एवंप्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत् ॥२॥

विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया ॥
तया त्वमेव वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः ॥३॥

मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे ॥
तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम् ॥४॥

आधारिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा ।५॥

मार्कण्डेय उवाच ॥६॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः
प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं शंसितव्रतम् ॥७॥

निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च ॥
जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने ॥८॥

संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः ॥९॥
स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन् ॥
तौ तस्मिन्पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं
महीमयीम् ॥१०॥
अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ॥
निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ॥११॥

ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम् ॥
एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ॥१२॥
परिपुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका
॥१३॥

ऋषि बोले ॥१॥

तुझे यह कहा भूप देवी-माहात्म्य उत्तम ।
ऐसे प्रभाव की देवी धारती है वही जगत् ॥२॥

विद्या वही है, बनती विष्णु माया सनातनी ।
उसी से तू तथा वैश्य विवेकी जन और भी ॥३॥

मोहते मोहित हुए-मोहेंगें जन और भी
उसी महेश्वरी को तू शरण प्राप्त हो नृप ॥४॥

पूजने से वही देती भोग स्वर्ग विमुक्ति भी ॥५॥

मार्कण्डेय बोले ॥६॥

उसकी बात सुन यों सुरथ क्षितिपालक ।
प्रणाम दे महाभाग ! उस मेधा महर्षि को ॥७॥

विरक्त हो के ममता और राज्यापहार से ।
गया तभी तपस्या को साथ में वैश्य भी गया
॥८॥

दर्शनार्थ पराम्बा के नदी के तीर पै रहा ।
वैश्य ने भी तप किया परसूक्त जपा सदा ॥९॥
दौनों ही ने रची मूर्ति देवी की मृत्तिकामयी ।
करते उसकी पूजा पुष्प-धूपाग्नि होम से ॥१०॥

निराहार यताहार तन्मना सावधान हो ।
दोनों ने ही बलि दिया अपने रक्त से सिंचा
॥११॥

आराधना यों करते तीन वर्ष हुए तभी ।
हुई तुष्ट जगद्धात्री बोली प्रत्यक्षचण्डिका ॥१३॥

देव्युवाच ॥१४॥

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन ॥
मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत्॥१५

मार्कण्डेय उवाच ॥१६॥

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि ॥
अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात् ॥१७॥

सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः ॥
ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम्
॥१८॥

देव्युवाच ॥१९॥

स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते
भावन् ॥२०॥

हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥२१॥

मृतश्च भूयः संप्राप्य जन्मदेवाद्विवस्वतः ॥२२॥

सावर्णिको मनुर्नाम भवान्भुवि भविष्यति ॥२३

वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोस्मत्तोऽभि-
वाञ्छितः ॥२४॥

तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति
॥२५॥

मार्कण्डेय उवाच ॥२६॥

इति दत्त्वा तयोर्देवो यथाभिलषितं वरम् ॥२७

बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता ॥
एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ॥२८॥

सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः
॥२९॥

सावर्णिर्भविता मनुः ॥ॐ॥

देवी बोली ॥१४॥

चाहा जो तुमने भूप ! तुमने वैश्यवर्य जो ॥
मुझसे लो सभी पाओ मैं देती तुष्ट हो तुम्हें
॥१५॥

मार्कण्डेय बोले ॥१६॥

मांगा भूपाल ने अग्र जन्म में राज्य सुस्थिर ।
यहाँ भी अपना राज्य हत शत्रुहुवा कहा ॥१७

वैश्य ने ज्ञान ही मांगा विरक्त मन विज्ञने ।
अहं ममेति आसक्ति नाश कारक मोक्षद ॥१८॥

देवी बोली ॥१९॥

थोड़े दिनों में नृप तू अपना राज्य पायगा ॥२०

हत शत्रु यहां राज्य तेरा अचल होयगा ॥२१।

मरने पै पुनर्जन्म पा के देव दिनेश के ॥२२॥

सावर्णि नामक मनु फिर भूपर होयगा ॥२३॥

वैश्य तूने किया है जो मुझसे वर याचित ॥२४

देती हूँ मुक्तिका हेतु ज्ञान होगा तुझे अभी
॥२५॥

मार्कण्डेय बोले ॥२६॥

ऐसे दे उन को देवी वर इच्छानुसार ही ॥२७

उनसे संस्तुत हुई सद्य अन्तर्हिता हुई ।
ऐसे पा वर देवी से सुरथक्षितिपालक ॥२८॥

सूर्य से जन्म पा होगा मनु सावर्णि नामका
॥२९॥

मनुसावर्णि नामका ॐ।

अथ देवीसूक्तम् ।।

ॐअहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यह-
मादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभावि भर्म्यह-
मिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ।।१।।

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं
त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते
सुप्राव्ये३यजमानाय सुन्वते ।।२।।

अहं राष्ट्रीसङ्गमनी वसूनां
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा
भूरिस्थात्रां भूर्या वेशयन्तीम् ।।३।।

मयासो अन्नमतियोविपश्यति यः
प्रानिति य ईशृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मान्त उपक्षियन्ति
श्रुधिश्रुत श्रद्धिवंते वदामि ।।४।।

अहमेव स्वयमिदं वदामि
जुष्ट देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं
तमृषिं तं सुमेधाम् ।।५।।

अहं रुद्राय धनुरातनोमि
ब्रह्मद्विषे शर वे हन्त वाउ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्य-
हं द्यावापृथिवी आविवेश ।।६।।

अहं सुवे पितरमस्यमूर्द्ध-
न्ममयोनिरप्स्वं१तः समुद्रे
ततो वितिष्ठे भुवनानुविश्वो
तामूं द्यांवर्म्मणोपस्पृशामि ।।७।।

अहमेव वात इव प्रवाम्यारभ-
माणा भुवनानि विश्व ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती
महिना संबभूव ।।८।।

इति ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तं समाप्तम् ।

मैं रुद्रों से विचरती वसुओं से
मैं मित्रावरुणद्वयी ।
मैं इन्द्राग्नी अश्विनों को
धारूं सर्वात्मरूप से ।।१।।

मैं सोम और त्वष्टा को पूषा को भगको सदा ।
हविष्मान् यज्ञकर्ता को सोमाभिषव मैं करूँ ।
मै ही धन इन्हें देती यजमानादि लोक को
।।२।।

सबकी प्रभु मैं राष्ट्री वसुसंगमनी रही ।
प्रथमा याजकों की हूँ (मैं) प्रत्यक्ष बनती रहूँ ।
अनेक रूपवाली को बहु स्थान विशेष में ।
विधान से पूजते है वे सभी यजते मुझे ।।३।।

मुझसे जो अन्न रखता देखता प्राण धारता ।
कहा हुआ ईं सुनता मेरे ही व्याप्ति भावसे ।
मुझे न जानते लोग क्षीण होते रहें सदा ।
श्रुत तू सुन श्रद्धा से युक्त ही मैं तुझे कहूँ ।।४।।

मैं ही यह करूं देवों नरोने जो किया वही ।
जिसे चाहूँ उसे ही मैं बनाऊं अधिकाधिक ।
उसे ब्रह्मा ऋषि उसे मेधावान् मैं करूं
उसे ।।५।।

मैं ही तो रुद्र का चाप चढाती हूँ स्व शक्ति से
ब्रह्मद्वेषी त्रिपुर के प्राण हिंसन के लिए ।
मैं ही संग्राम करती मेरे मनुज के लिए । मैं ही
द्यौ और भूमी में सदा व्याप्त हुई रहूँ ।।६।।

मैं ही प्रसव करती द्यौ (दिव्) के इस के शिर ।
मेरी योनि रहे अन्तः समुद्र जल-राशि में ;
वह मैं सब में व्याप्त दिव को देह से छुऊं
।।७।।

मैं ही हवा सी बहती भुवनारम्भ में करूं ।
परे द्यौ के परे भू के ऐसी मैं महिमावती ।।८।।

श्रीहरिशास्त्रि विरचित हिन्दी दुर्गापाठ में
ऋग्वेद का देवीसूक्त पूर्ण ।

श्रीजगदम्बार्पणमस्तु ।श्रीः।।